बिना बोझ के शिक्षा प्राप्त करना

(स्कूली विद्यार्थियों पर शिक्षा के बोझ को कम करने के
लिए उपायों का सुझाव देने हेतु मानव संसाधन विकास
मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट)

अनुवाद -राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद
वरुण मार्ग, डिफेन्स कालोनी,
नई दिल्ली- 110024

NIEPA DC
D07786

54
372.19
BID-B

372.19
BID-B

समिति

1.	यशपाल	अध्यक्ष
2.	कृष्ण कुमार	सदस्य
3.	पोरोमेश आचार्य	सदस्य
4.	दीना गुहा	सदस्य
5.	विभा पार्थसारथी	सदस्य
6.	वी०जी० कुलकर्णी	सदस्य
7.	टी०एस० सरस्वती	सदस्य
8.	जी०एल० अरोड़ा	सदस्य-सचिव

विशेष सहयोगी

के०आर०पी० सिंह

अनुसंधान सहयोगी

372.19
RAS-CR

1. पद्मा एम० सारंगपाणि
2. सुभाश्री दत्ता सिन्हा

LIBRARY & DOCUMENTATION CENTRE
National Institute of Educational
Planning and Administration.
17-B, Sri Aurobindo Marg,
New Delhi-110016
DOC, No D-7786
Date 14-10-93

स्कूली छात्रों के बोझ को कम करते हुए अधिगम की गुणवत्ता में सुधार लाने संबंधी उपाय सुझाने के लिए राष्ट्रीय सलाहकार समिति

(भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा गठित)

प्रो० यशपाल
(अध्यक्ष)

15 जुलाई, 1993

सेवा में,

श्री अर्जुन सिंह,
मानव संसाधन विकास मंत्री,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली- 110001.

प्रिय अर्जुन सिंह जी,

आपके द्वारा कुछ माह पूर्व गठित की गई राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट प्रेषित करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है ।

स्कूली बच्चों के बोझ को कम करते हुए अधिगम की गुणवत्ता में सुधार लाने संबंधी उपाय सुझाने के बारे में जिस बुनियादी प्रश्न पर हमें विचार करने के लिए कहा गया था उस पर हमने पर्याप्त चिन्तन किया है । हमने संपूर्ण देश में व्यापक स्तर पर विचार विमर्श किया है । हमने शिक्षकों, शिक्षाक्रम निर्माताओं, पाठ्यपुस्तक लेखकों, विभिन्न स्कूल बोर्डों, वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, पुस्तक प्रकाशकों, अध्यापकों, प्रधानाचार्यों तथा कई अन्य व्यक्तियों से बातचीत की है । हमने देश के विभिन्न भागों की पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण किया है । समाचार पत्रों, आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से हमने जन सामान्य से जो अनुरोध किया उस अनुरोध के उत्तर में प्राप्त पत्रों को हमने पढ़ा है। पर्याप्त चर्चा करने के बाद हमने समस्या का विश्लेषण और कुछ सिफारिशें प्रस्तुत की हैं ।

मैं व्यक्तिगत रूप से यह टिप्पणी करना चाहूँगा कि इस रिपोर्ट को लिखना आसान काम नहीं था । ऐसा इस कारण से नहीं है कि इस समस्या को समझने में हमारे सामने बहुत सारी कठिनाईयां हैं या इसलिए नहीं कि इस पर हम सभी लोगों में बहुत ज्यादा मतभेद है अथवा इसलिए भी नहीं कि यह विश्वास करने में कठिनाई है कि कुछ न कुछ किया जाना आवश्यक है । व्यक्तिगगगत रूप से स्कूली शिक्षा को स्वतंत्र रूप से परिवर्तनीय मानने में मेरी असमर्थता ही मेरी कठिनाई का कारण है क्योंकि इस मान्यता का अर्थ यह होगा कि सामाज्जिक व्यवस्था का बहुत सारी बातों में परिवर्तन किए बिना शिक्षा में परिवर्तन लायााा जा सकता है । वस्तुतः हमारे छात्रों पर न केवल हमारे देश की व्यवस्था का प्रभाव पड़ता है, बल्कि बाहरी परिदृश्य की दोषपूर्ण व्याख्या भी उन्हें प्रभावितत करती है । यही कारण है कि वे स्वस्थ रूप से विकसित नहीं हो पाते और देश । उनके योगदान से वंचित रह जाता है । तथापि हमने कई सिफारिशें की हैं जिनसेसे मदद मिलनी चाहिए ।

बच्चों पर बोझ के संदर्भ में स्कूली बैग के गुरुत्त्वीय बोझ के बारे में संचाार माध्यमों ने काफी चर्चाएं की हैं और संसद में भी इस विषय पर काफी बहस हुईई है । इस अध्ययन के उपरांत मैं और समिति के अधिकांश सहकर्मी इस बात से सहममत हैं कि विषयवस्तु को न समझ पाने के परिणाम स्वरूप बच्चे पर ज्यादा घातक बोझ पड़ता है । वस्तुतःसरकारी और नगर पालिका स्कूलों में पढ़ने वाले अनेक बच्चों पर पाठ्यपुस्तकों का भार तो अधिक नहीं होता लेकिन न समझ पाने का बोझ भी समान रूप से अन्यायपूर्ण है । वस्तुतःहमें यह बताया गया है कि पढ़ाई पूरी किये बिनाा स्कूल छोड देने वाले बच्चों में से अधिकांश बच्चे न समझ पाने के बोझ के कारण ही स्कूल छोडने को विवश होते हैं । क्षमता की दृष्टि से यह बच्चे उन बच्चों से श्रेष्ठठ होते हैं जो आत्मसात किए बिना पर्याप्त विषयवस्तु को केवल याद कर लेते हैं तथा परीक्षा में अच्छा कर जाते हैं । व्यक्तिगत रूप में मेरा यह विश्वास है कि बिना समझे "अधिक सीखने" की अपेक्षा समझ कर "थोड़ा सीखना" ही ज्यादा बेहतर है ।

हम इस बात का दावा नहीं करते कि हमने कोई क्रांतिकारी काम कर दिया है या कोई ऐसी बात कह दी है जो पहले किसी ने न कही हो । तथापि मेरा सुझाव है कि इस रिपोर्ट के विश्लेषणों तथा इसकी सामान्य सिफारिशों पर यथासंभव बड़े पैमाने पर चर्चा होनी चाहिए । मेरा विश्वास है कि कुछ बुनियादी मुद्दों पर किया गया चिंतन, जिसे इस रिपोर्ट में प्रस्तुत किया गया है, हमारे भविष्य के लिए लाभप्रद होगा । रिपोर्ट को न केवल हिन्दी और अंग्रेजी में ही प्रकाशित किया जाना चाहिये बल्कि अन्य सभी क्षेत्रीय भाषाओं में भी इसका प्रकाशन होना चाहिए । इसे व्यापक स्तर पर वितरित किया जाना चाहिए ताकि काफी संख्या में शिक्षक, अभिभावक और छात्र इन मुद्दों पर परिचर्चा शुरू कर सकें । जब हम तर्क संगत सिफारिशों का संग्रह करके उनका प्रारूप तैयार करने में जुटे हुए थे और कार्य में विलम्ब हो रहा था तो भी आपने संयम बनाए रखा, इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं ।

सादर,

आपका,

(यशपाल)

विषय

1.	प्रस्तावना	1 – 4
2.	शिक्षाक्रम के भार की समस्या	5 – 22
3.	समस्या की जड़ें	23 – 36
4.	सिफारिशें	37 – 44
5.	परिशिष्ट	45 – 48

प्रस्तावना

छात्रों पर " शैक्षिक बोझ " तथा अधिगम के असंतोषजनक स्तर संबंधी चिंता हमारे देश में पिछले दो दशकों के दौरान बार- बार मुखर होती रही है । अनेक समितियों तथा दलों ने इस प्रश्न पर गहन रूप से चर्चा की है । ईश्वर भाई पटेल समीक्षा समिति (1977), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के कार्यदल (1984) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति संबंधी पुनरीक्षा समिति (1990) द्वारा छात्रों के शैक्षिक बोझ को कम करने के लिए अनेक सिफारिशें की गई हैं । शिक्षाक्रम विकसित करने वाली संस्थाएं आमतौर पर समिति की सिफारिशों से सहमत होती हैं तथा जनता को इस बात का आश्वासन देती हैं कि शिक्षाक्रम में अगलीबार संशोधन करते समय इन्हें ध्यान में रखा जाएगा। फिर भी इस समस्या का समाधान करने के स्थान पर जब एक नई/ और भी उग्र हो जाती है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के कार्यान्वयन हेतु तैयार की गई नई पाठचर्या के मामले में ऐसा ही हुआ है । अतः शिक्षा की समस्याओं खासकर छात्रों पर शैक्षिक बोझ की समस्या के संबंध में नए सिरे से विचार करने के उद्देश्य से भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा मार्च, 1992 में एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति गठित की गई जिसके संदर्भाधीन विषय निम्नलिखित हैं :-

" सभी स्तरों के स्कूली छात्रों, खासकर छोटे बच्चों पर शिक्षा के भार को कम करते हुए जीवन पर्यन्त स्वाध्याय और कौशल विकसित करने की क्षमता सहित अधिगम की गुणवत्ता में सुधार लाने के उपायों के बारे में सलाह देना । "

कार्य शुरू करने से पूर्व समिति ने अपने कार्य के प्राचलों (पैरामीटर) तथा सौंपे गए कार्य को पूरा करने की पद्धति के बारे में निर्णय किया । राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखने के विचार से समिति ने केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा

/पाठ्यचर्या अस्तित्व में आती है तो यह समस्या

बोर्ड या राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की पाठ्यचर्याओं तक ही अपना कार्य सीमित न रखने बल्कि विभिन्न राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों की पाठ्य- पुस्तकों को भी ध्यान में रखने का निर्णय लिया । दूसरी बात, समिति ने अपनी सिफारिशों को सर्वेक्षणों से प्राप्त आंकड़ों, शिक्षकों के साथ व्यापक विचार- विमर्श तथा पाठ्यपुस्तकों और अन्य शिक्षण सामग्रियों के विश्लेषण पर आधारित करने का निर्णय लिया । तीसरी बात, नवाचारी कार्यक्रमों में संलग्न एजेंसियों/ संगठनों के कार्य पर ध्यान देने का भी समिति ने निर्णय किया ।

परामर्श लेने की प्रक्रिया एन० सी० ई० आर० टी० के कुछ संकाय सदस्यों के साथ बैठक से प्रारंभ हुई तथा इसके उपरांत देश के भिन्न-भिन्न राज्यों तथा स्थानों जैसे दिल्ली, त्रिवेन्द्रम, पुणे और कलकत्ता में कार्यरत शिक्षकों और प्रधानाचार्यों के साथ बैठकें आयोजित की गई । परामर्श लेने वाली बैठकें नवाचारी कार्यक्रमों में लगे स्वैच्छिक संगठनों, पाठ्यचर्या तथा पाठ्यपुस्तकों के लेखकों, प्राइवेट प्रकाशकों तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्डों के अध्यक्षों के साथ भी आयोजित की गई । समिति के कुछ सदस्यों ने बम्बई, नासिक, बड़ौदा और कलकत्ता में अभिभावकों, शिक्षकों और छात्रों के साथ बैठकों का आयोजन किया । शिक्षकों, अभिभावकों की राय के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए बम्बई और कलकत्ता में प्रश्नावलियों की मदद से सर्वेक्षण किए गए ।

बच्चों पर पढ़ाई के यांत्रिक भार के परिप्रेक्ष्य में स्कूली शिक्षा की समस्याओं पर दृष्टिपात करने के इस कार्य में पूरे देश को शामिल करने के लिए समाचार-पत्रों में विज्ञापनों, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर विशेष उद्घोषणाओं के माध्यम से छात्रों, अभिभावकों, शिक्षकों तथा आम जनता से उनके विचार और सुझाव मांगे गए ।

समिति को बच्चों की शिक्षा में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों, शिक्षकों और व्यावसायिकों से 600 से अधिक पत्र, ज्ञापन तथा प्रतिवेदन प्राप्त हुए ।

मनीषियों के साथ व्यापक परामर्श, वर्तमान शैक्षिक सामग्रियों के विश्लेषण और शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं से समिति को वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था की कार्य प्रणाली को समझने में मदद मिली है और इनके आधार पर ही समिति ने सिफारिशें की हैं ।

समिति को अपने कार्य में अनेक शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, पाठयक्रम और पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों, संगठनों, संघों और विभागों का सहयोग प्राप्त हुआ । हम अपने कार्य में उनके योगदान के लिए आभार व्यक्त करते हैं। विशेष रूप से हम राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद {एस0सी0ई0आर0टी0} दिल्ली, जहां हमारा कार्यालय स्थित है, के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं जिसने हमारे कार्य को सुकर बनाने के लिए सभी प्रकार का प्रशासकीय सहयोग प्रदान किया । हम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद {एन0सी0ई0आर0टी0} तथा इसके सामाजिक विज्ञान और मानविकी विभाग के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करते हैं जिसने समिति की बैठकों के आयोजन के लिए निधियां तथा अन्य सुविधाएं प्रदान की । त्रिवेन्द्रम, पुणे और कलकत्ता में क्षेत्रीय परामर्श बैठकों के आयोजन के लिए केरल, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल के शिक्षा विभाग तथा रा0शै0अनु0 एवं प्र0 परि0 के क्षेत्रीय सलाहकार भी प्रशंसा के पात्र हैं । स्वैच्छिक संगठन अल्ला रिप्पु, दिगन्तर और एकलब्य भी समिति के सदस्यों के साथ अपने अनुभवों के आदान प्रदान के लिए विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं हम दूरदर्शन और आकाशवाणी के अधिकारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं जिन्होंने दर्शकों एवं श्रोताओं से समिति के पास अपने विचारों और सुझावों को भेजने के अनुरोध के लिए प्रसारण की विशेष व्यवस्था की और सबसे अधिक हम उन सैकड़ों अभिभावकों, विद्यार्थियों और शिक्षकों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं जिन्होंने हमारे इस अनुरोध के उत्तर में अपने विचारों को लिखित रूप में भेजा । कुछ लोगों ने तो अपने- अपने स्थानों पर बैठकें/ विचार गोष्ठियां आयोजित करने के बाद अपने विचारों को भेजा

../=

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, दिल्ली की आशुलिपिक श्रीमती मीनू तनेजा धन्यवाद की पात्र हैं जिन्होंने सभी प्रकार की लिपिकीय सहायता प्रदान की तथा कार्यवृत्त, विचार-विमर्श के कागजातों और रिपोर्टों का टंकण करने अन्तिम रूप दिया ।

समस्या

01. प्रस्तावना

हमारी समिति का कार्य हमारी शिक्षा व्यवस्था की एक बड़ी त्रुटि से सम्बंधित था.। इस त्रुटि को संक्षेप में इस तरह समझा जा सकता है कि"अधिक पढ़ाई कराई जाती है, परन्तु बच्चे बहुत थोड़ा सीखते या समझते हैं । यह समस्या भिन्न रूपों में परिलक्षित होती है। समस्या का सबसे ज्यादा विकट रूप है बच्चों को घर से स्कूल और स्कूल से घर जाते समय प्रतिदिन बड़ा बस्ता (स्कूलबैग) ढ़ोते हुए देखा जाना । दिल्ली में किए गए सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हुआ है कि पब्लिक स्कूलों की प्राथमिक कक्षाओं में स्कूल बैग का औसतन भार 4 किलो के लगभग है । फिर भी हम जिस बोझ का अध्ययन करना चाहते हैं वह न केवल भौतिक बोझ है बल्कि सीखने का बोझ भी है, जो सभी स्थानों पर विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में पढ़ने वाले सभी बच्चों पर है। प्रसिद्ध लेखक आर०के०नारायण ने कुछ वर्ष पहले राज्य सभा में प्रभावशाली भाषण करते हुए देश का ध्यान इस रोजना दृश्य की ओर आकृष्ट किया था । लेकिन इधर कुछ वर्षों में स्थिति और भी बदतर हुई है । यहां तक कि नर्सरी अथवा किण्डर गार्टन के बच्चे भी पुस्तकों और नोट बुकों का बड़ा बोझ ढ़ोते हैं यह समस्या बड़े नगरों तक ही सीमित नहीं है, अपितु छोटे शहरों और बड़े गांवों में भी यह स्थिति देखी जा सकती है।

स्कूल बैग का भार तो समस्या का एक पहलू है, दूसरा पहलू बच्चों की रोज की दिनचर्या में देखा जा सकता है। बचपन के शुरू के दिनों से ही बच्चे, विशेषकर मध्यम वर्गों के बच्चे गृह कार्य(होम वर्क) टयूशन और विभिन्न प्रकार की कोचिंग कक्षाओं में भाग लेने को विवश हो जाते हैं । अवकाश तो बच्चों के जीवन में, विशेष कर शहरी बच्चों के जीवन में बड़ी ही दुर्लभ वस्तु हो गया है। बच्चों को रोज की दिनचर्या में अपनी सहज प्रकृति या क्षमताओं को दिखाने का कोई अवसर नहीं मिलता, उन्हें खेलने, साधारण-आनंद लेने-सोचने-समझने और विश्व को जानने का समय नहीं मिलता- ।

02. <u>नीरस शिक्षा</u>

एक ओर तो औपचारिक शिक्षा के स्तर में गिरावट के संबंध में शिकायतें की जाती हैं और दूसरी ओर बच्चों पर प्रारंभिक दिनों से ही शैक्षिक बोझ डाल दिया जाता है। इन दिनों स्थितियों में संगति बिठाना कठिन है। शिक्षक प्रायः यह शिकायत करते हैं कि उनके पास इतना समय नहीं होता है कि वे कक्षा में ही किसी विषय को विस्तार से समझा सकें या कार्यकलापों को आयोजित कर सकें। पाठ्यक्रम को पूरा करना ही जैसे अपने आप में लक्ष्य बन गया प्रतीत होता है और इसका शिक्षा के दार्शनिक और सामाजिक लक्ष्यों से कोई सरोकार नहीं रहा है। सामान्यतया कक्षा में पाठ्यक्रम को पूरा करने का ढंग यह होता है कि शिक्षक निर्धारित पाठ्यपुस्तक को जोर से बोलकर पढ़ देते हैं और बीच-बीच में ब्लैक बोर्ड पर महत्वपूर्ण बिन्दुओं को लिख दिया करते हैं। अच्छे से अच्छे स्कूलों में भी बच्चों को प्रयोग करने, भ्रमण करने या किसी प्रकार का निरीक्षण करने का शायद ही कभी अवसर मिलता हो। औसत स्कूलों में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में स्थित स्कूलों में तो कई मामलों में उपर्युक्त प्रकार का शिक्षण भी नहीं होता है। अनेक राज्यों में स्कूल शिक्षक बच्चों को स्कूल के समय के बाद शुल्क देकर पढ़ने के लिए भी प्रेरित करते हैं जबकि नियमित कक्षा शिक्षण तो उनकी नजर में तुच्छ कार्य बनकर रह गया है।

इस स्थिति में यह स्पष्ट होता है कि शैक्षिक प्रक्रिया में संलग्न शिक्षक और बच्चे दोनों आनंद की भावना ही खो चुके हैं। अधिकतर शिक्षकों और बच्चों के लिए पठन-पाठन केवल नीरस कार्य बनकर रह गया है। प्रतिष्ठित या गिने चुने संस्थानों में पढ़ने वाले बच्चों को छोड़ कर स्कूल जाने वाले अधिकतर बच्चों के लिए यह स्कूली शिक्षा नीरस बोझिल, अरूचिकर और कटु अनुभव प्रदान करने वाली प्रतीत होती है।

शिक्षा को मुख्यतः परीक्षाओं के लिए तैयारी की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करने के लिए उन्हें प्रति दिन उपदेश दिया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा के संदर्भ में अन्य किसी प्रेरणा अथवा प्रयोजन की बैधता नहीं बची है।

इस प्रकार की मानसिकता पैदा करने के कार्य में शिक्षकों का योगदान विशेष रूप से विचारणीय है । प्रशिक्षित शिक्षकों से शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों की जानकारी रखने की अपेक्षा की जाती है । शिक्षा के उद्देश्य के रूप में "बच्चे के समग्र व्यक्तित्व का विकास" देश में कहीं भी स्थित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रतिदिन दोहराया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यधिक बड़ी कक्षाएं, भारी पाठ्यक्रम, कठिन पुस्तकें आदि के फलस्वरूप विकसित कठिन परिस्थितियों में शिक्षक यह अनुभव करते हैं कि वे इस प्रकार के उच्च उद्देश्यों के लिए ज्यादा कुछ नहीं कर सकते । इसके अतिरिक्त उनमें से अधिकांश के पास शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए न तो ज्ञान ही होता है और न ही आवश्यक कुशलता । चालीस और एक का स्वीकृत विद्यार्थी शिक्षक/ अनुपात अब मानदण्ड की अपेक्षा एक अपवाद बन गया है, और देश के अनेक भागों में एक कक्षा में साठ से अस्सी विद्यार्थियों का होना एक आम बात हो गई है । समिति को यह भी पता चला है कि कई राज्यों में उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में प्रायः सौ या सौ से भी अधिक विद्यार्थी होते हैं, उनमें से कई तो कमरे के बाहर बरामदें में खड़े होते हैं । राष्ट्रीय राजधानी में, कई "मॉडल माध्यमिक स्कूलों, केन्द्रीय विद्यालयों तथा कुछ विशिष्ट पब्लिक स्कूलों की प्राथमिक कक्षाओं में साठ से अधिक विद्यार्थी होते हैं । कक्षा में छात्रों की अधिक संख्या स्वाभाविक रूप से शिक्षकों में निराशा की भावना का संचार करती है। किन्तु शिक्षक भारी पाठ्यक्रम, निम्न स्तर की पाठ्य-पुस्तकों जैसी पाठयक्रम से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करने में असहाय क्यों हो जाते हैं ? क्यों नहीं वे अधिक मुखर तरीके से कार्य करते हुए शिक्षाक्रम सुधार के कार्य में स्वयं को सम्मिलित करते हैं ?

पाठ्यक्रम से सम्बन्धित जांच करने तथा व्यवस्थित ढंग से सुधार करने को प्रोत्साहित करने के मंच बहुत कम हैं । इसके अतिरिक्त यह प्रतीत होता है कि शिक्षकों ने यह दृष्टिकोण बना लिया है कि शिक्षाक्रम तथा पाठ्य पुस्तकों से

सम्बन्धित सभी निर्णय लेने का दायित्व अधिकारियों को है । वास्तविकता यह है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकों की तैयारी में शिक्षकों की सहभागिता सिद्धान्त रूप में स्वीकार तो की जाती है परन्तु व्यवहार में इस कार्य में मुट्ठीभर शिक्षक ही प्रतीकात्मक रूप से भाग लेते हैं । अतः अधिकांश शिक्षकों के पास इस प्रकार सोचने का आधार है कि उन्हें पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में समय-समय पर किये गये परिवर्तनों के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यहां तक कि ऐसे मामलों में भी जहां पाठय-पुस्तक में कोई तथ्यात्मक गलती होती है, शिक्षको द्वारा उक्त गलती को सुधारने के लिए कोई शिकायत नहीं की जाती है। शिक्षाक्रम सुधार के प्रति शिक्षकों की जागरूकता तथा सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए कोई स्थापित प्रक्रिया या अधिकारिक मंच नहीं है। इसके विपरीत कुछ ऐसे मामले भी सामने आए हैं जिनमें किसी शिक्षक ने शासन द्वारा प्रकाशित पाठयपुस्तक में किसी गलती के विषय में शिकायत की तो उल्टा उन पर ही कार्यवाही हुई । यद्यपि इस प्रकार के मामले बहुत ही कम होते हैं और उन्हें अति दुर्भाग्यपूर्ण ही माना जाता है, परन्तु, इनसे इतना तो स्पष्ट होता है कि अधिकांश शिक्षक सहज रूप से ऐसा क्यों सोचते हैं कि जिन पाठयक्रमों तथा पाठयपुस्तकों को वे पढ़ाते हैं, उन्हें आलोचनात्मक ढंग से जांचने का कार्य उनका नहीं है ।

03. परीक्षा प्रणाली

हमारी परीक्षा प्रणाली की कमियों के बारे में अनेक सरकारी समितियां बहुत कुछ लिख चुकी हैं । हमारी परीक्षा प्रणाली का दोष यह है कि परीक्षा के द्वारा संकल्पनाओं तथा सूचनाओं को अपरिचित व नयी समस्याओं में प्रयुक्त करने की क्षमता या सामान्य रूप से सोचने की क्षमता की जांच नहीं होती अपितु केवल रटने की क्षमता की जांच ही हो पाती है। कक्षा 10 तथा 12 के पश्चात ली जाने वाली सार्वजनिक परीक्षाएं ऐसी घटनाएं बन गई हैं जिनका अपना एक विशिष्ट चरित्र तथा संस्कृति होती है ।

परीक्षा के द्वारा जिस प्रकार का भय उत्पन्न होता है तथा परीक्षा के लिए जिस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता होती है वे सब सामाजिक जनश्रुति में इतने स्थापित हो गये हैं कि प्रश्न-पत्र शैली में मामूली सुधारों से शिक्षण अधिगम में कोई अन्तर नहीं आयेगा । यह प्रभाव इतना अधिक दृढ़ होता है कि देश के कई भागों में स्कूल कक्षा 10 से कुछ वर्ष पूर्व ही प्राथमिक कक्षाओं में औपचारिक लिखित परीक्षा लेनी शुरू कर देते हैं । बच्चों को स्कूल में प्रवेश लेते ही पता चल जाता है कि स्कूलों में जिस चीज का अत्यधिक मूल्य है वह है परीक्षा उत्तीर्ण करना ।

शिक्षक तथा अभिभावक दोनों ही परीक्षा के भय को निरन्तर बढ़ाते रहते हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें पाठ्य पुस्तकों तथा सहायक पुस्तकों से सम्पूर्ण सूचना को कंठस्थ करना ही अधिक व्यावहारिक प्रतीत होता है । शिक्षित अभिभावक जो खुद परीक्षाओं में बैठ चुके हैं तथा अशिक्षित अभिभावक, जिनका परीक्षा प्रणाली विषयक ज्ञान जनश्रुति पर आधारित होता है, यह विश्वास करते हैं कि शिक्षा में वास्तविक महत्व सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त अंकों का है । यह विश्वास निसंदेह सामाजिक तथा आर्थिक वास्तविकता पर आधारित होता है ।। हाई स्कूल, उच्चतर माध्यमिक, या बी0ए0/बी0एस0सी0 परीक्षाओं में प्राप्त अंकों की प्रतिशतता के आधार पर ही किसी विद्यार्थी को किसी विश्व-विद्यालय में प्रवेश के लिए या रोजगार के लिए साक्षात्कार का अवसर प्रदान किया जाता है । क्योंकि परीक्षा में प्राप्त अंक स्कूल या कालेज में विद्यार्थी की सफलता के मूल प्रामाणिक प्रलेख होते हैं, उच्च स्तर की संस्थाएं या रोजगार अभिकरण स्वाभाविक रूप से इन पर विश्वास कर लेते हैं । परीक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका कोई निश्चित आरंभ अथवा अन्त नहीं है । परीक्षा-प्रणाली के ढांचे अथवा इसकी प्रक्रिया में परिवर्तन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि स्रोत-परिणाम या कार्य कारण का सहसम्बन्ध स्थापित किया जाय, तथापि, परीक्षा प्रणाली शिक्षा प्रणाली की अपनी विशेषताओं की मदद से चलती रहती है ।

04. "सत्य" के रूप में पाठ्य- पुस्तक की परिकल्पना

परीक्षा उत्तीर्ण करने में बच्चों की मदद की दृष्टि से तैयार की गई सहायक पुस्तकों में ही नहीं अपितु पाठ्यपुस्तकों की लेखन शैली तथा विषयवस्तु में भी परीक्षा प्रणाली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। यदि "तथ्यों " या "सूचनाओं" के कारण परीक्षा का बोझ होता है तो पाठयपुस्तकों के बारे में भी यह बात बिल्कुल सच है । कुछ अपवादों को छोड़कर, बच्चों की सोचने तथा जांच पड़ताल करने की क्षमता को विकसित करने की अपेक्षा हमारी पाठयपुस्तकें मुख्य रूप से " सूचना" या " तथ्य" की जानकारी देने हेतु ही लिखी गई प्रतीत होती हैं । पिछले कुछ वर्षों में निश्चित मात्रा में चिन्तनशील लेखन को पाठ्य पुस्तकों में समाविष्ट करने के कुछ प्रयास किये गये हैं । इस प्रकार का लेखन इतना आवपादित है कि उदाहरण के रूप में इसे बिना किसी कठिनाई के नाम सहित बताया जा सकता है । कक्षा 8 की पुस्तक में " पत्तियों का विन्यास कैसे होता है " नामक पाठ में इस प्रकार के लेखन का उदाहरण है । यह पाठ, पाठ्यपुस्तकों के उन हजारों पृष्ठों से अलग-थलग हैं जिन्हें हमारे शिक्षकों तथा छात्रों को समझने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है क्योंकि इन में दी गई विषय वस्तु संक्षिप्त और गूढ़ तरीके से दी गई होती हैं ।

× कक्षा 8 की विज्ञान की यह पाठ्य-पुस्तक रा0शै0अनु0एवं प्र0परिषद द्वारा तैयार की गई है ।

पाठ्य-पुस्तकों में जिस प्रकार की शैली का अधिक प्रयोग होता है उसके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार के पैराग्राफ हैं :-

> पी॰ एच॰ को "ग्रामियन्स" प्रति लीटर अथवा "माल" प्रति लीटर में किए गए हाइड्रोजिनियन संघनता के आधार-10 के नकारात्मक लघुगणक के रूप में परिभाषित किया जाता है (कक्षा-X)
>
> छोटी आंत में उपापचय के दौरान चिकनाई युक्त अम्ल धीरे-धीरे जलीकृत होकर लिपासे से की एन्जाइम प्रक्रिया के जरिए ग्लाइसेरी और चिकनाई युक्त अम्ल बनाते हैं जो पैनक्रियास में घुल जाती हैं। (कक्षा-X)
>
> हम देखते हैं कि यदि किसी दशमलव को 10.000 अथवा 1000 से भाग किया जाए तो हमें पहले बाई ओर के दशमलव स्थान जहां तक संख्या में शून्य हों और फिर भाजक के दूसरे घटक द्वारा दशमलव से शेष परिणाम का भाग देते हैं। (कक्षा-V)

पाठ्य-पुस्तकों की पठनीयता सम्बन्धी समस्या और भी गम्भीर हो जाती है जब बच्चे के पास ज्ञान प्राप्ति के लिये निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त और कोई संसाधन नहीं होता है। बच्चा किस सीमा तक शिक्षक पर निर्भर कर सकता है कि वह संक्षिप्त रूप से लिखी हुई पाठ्य सामग्री को उसे समझायेगा उसका निर्धारण शिक्षकों के स्तर, प्रशिक्षण के स्तर, प्रशिक्षण और जवाबदेही के आधार पर होता है। शिक्षा व्यवस्था के इन पहलुओं के संबंध में समिति ने जो महसूस किया उसके आधार पर यह कहना तर्क संगत प्रतीत होता है कि बच्चा अध्यापन की उस

---

xx हमने इस आरोप से बचने के लिये कि हम कतिपय विशिष्ट पुस्तकों, लेखकों, प्रकाशकों अथवा संगठनों की आलोचना कर रहे हैं, हवाला दिए बगैर ऐसे उदाहरण उद्धृत करने का निर्णय लिया है। हमारा उद्देश्य पाठ्य-पुस्तक लेखन की शैली में कतिपय आम प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालना है।

शैली के सम्मुख प्रायः बहुत बेबस होता है जो संवादात्मक शिक्षण से काफी दूर होती है, शिक्षकों की अनुपस्थिति और अनियमित उपस्थिति की बात तो अलग है । (और हम यह नहीं कह रहे हैं कि केवल शिक्षक ही अकेले उस अध्यापन के लिए जिम्मेदार हैं जो प्रतिदिन लाखों कक्षाओं में होता है जहां मुश्किल से ही कोई उपकरण होता है और प्रायः वायु- संचार अथवा प्रकाश के उपयुक्त साधन भी नहीं होते हैं)। उन परिस्थितियों में जो हमारे देश में व्यापक रूप से विद्यमान हैं, एक बच्चा उपर्युक्त "पी. एच." की परिभाषा को समझे बगैर रट डालता है और परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है ।

पाठ्य-पुस्तकों और गाइडों में गहरा संबंध बना हुआ है । देश के कुछ भागों में छात्रों को पाठ्य-पुस्तकों के साथ गाइडें (अथवा कुंजी) खरीदने के लिए मजबूर किया जाता है । इस सम्बन्ध में आर्थिक और व्यापारिक पहलुओं के अलावा पाठ्य-पुस्तकों की शैक्षिक भूमिका वास्तव में बहुत ही संदिग्ध हो गई है । इसे एक विषय का ज्ञान प्राप्त करने हेतु उपलब्ध विभिन्न स्रोतों में से केवल स्रोत न मान कर प्रायः एकमात्र अधिकारिक स्रोत माना जाता है । इस प्रकार की मान्यता के फलस्वरूप पाठ्यपुस्तकों का जो लाभप्रद उपयोग हो सकता है उस में बाधा पड़ती है । शिक्षक के मन में पाठ्यपुस्तक की कल्पना "सत्य" के रूप में होती है जिसे बच्चों को अवश्य रट लेना चाहिए । पाठ्य- पुस्तकों के विषय में इस प्रकार की धारणा और इनमें सम्मिलित सभी अध्यायों को पूरा करने का आग्रह मिलकर समस्त ज्ञान को बच्चों की याददाश्त के लिये बोझ बना देते हैं ।

बच्चे के दिन- प्रतिदिन के जीवन तथा पाठ्य-पुस्तकों की विषय वस्तु के बीच की दूरी भी ज्ञान को बोझ में बदल देती है । हम यहां उच्चस्तरीय विज्ञान अथवा गणित के बारे में नहीं बल्कि प्रारंभिक (एलीमेंट्री) विज्ञान, सामाजिक- अध्ययन, भाषा और अंकगणित की बात कर रहे हैं । पाठ्य- पुस्तकों में पाठ्य सामग्री इस ढंग से प्रस्तुत की जाती है कि पुस्तकीय ज्ञान बच्चे के संसार से बहुत

अलग दिखाई पड़ता है । यह दुखःद तथ्य विभिन्न विषयों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है । प्राकृतिक विज्ञानों में यह विषय को रहस्यमयी बना देता है । सामाजिक विज्ञानों में, इसे उपदेशों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिससे यह संकेत प्राप्त होता है कि हर प्रश्न का एक सर्वमान्य उत्तर होता है । बच्चों के परिप्रेक्ष्य तथा जीवन से विषय वस्तु के न जुड़ने का एक सामान्य स्रोत यह है कि पुस्तकों में केवल समृद्ध वर्ग की जीवन- शैली और जीवन दर्शन के बारे में ही बताया जाता है । इस जीवन शैली का चित्रण पक्के मकानों, आधुनिक रसोई घरों, विद्युत उपकरणों द्वारा किया जाता है ।हालांकिइस जीवन शैली में कुछ भी गलत नहीं है लेकिन प्रत्येक चित्रण व वर्णन में इसी जीवन शैली का प्रस्तुतिकरण बच्चों को जीवन की वास्तविकताओं से दूर ले जाता है । क्योंकि करोड़ों बच्चों के घरों में तो परंपरागत रसोईयां हैं या फिर अलग से रसोई घर हैं ही नहीं । आम भारतीय घरों में मौजूद दैनिक प्रयोग की वस्तुएं जैसे झाड़ू या मिट्टी के घड़े का किसी पाठ्य-पुस्तक में शायद ही वर्णन मिलता हो । क्या आम भारतीय झाड़ू को जो हमारे सामाजिक और भौतिक वातावरण को समझने का व्यापक साधन हो सकता है, हमारे पाठ्य- पुस्तक लेखक और चित्रकार पिछड़ेपन का प्रतीक मानते हैं ? या यह भी हो सकता है कि यह इतनी अधिक सामान्य या तुच्छ वस्तु है कि इसे शिक्षा सामग्री के रूप में प्रयुक्त करने की बात कोई सोचता नहीं है । हमारी पाठ्य- पुस्तकों में वर्णित विषय में आम भारतीय जीवन में प्रयोग होने वाली चीजों के पूर्ण अभाव को दृष्टिगत रखते हुए इन दोनों अनुमानों में से कोई भी पूर्णतया अप्रासंगिक नहीं है ।

बच्चे को पाठ्य-पुस्तकों से यह संदेश प्राप्त होता है कि साधारण लोग जो जीवन जीते हैं वह "गलत" अथवा असंगत है और यह बात मध्य वर्ग को छोड़कर केवल अन्य वर्गों के जीवन पर ही लागू नहीं होती । बचपन की सभी प्रकार की सरल खुशियों की भी पाठ्यपुस्तकों में अवहेलना की जाती है । कक्षा-5 के अभ्यास में दिया गया एक प्रश्न इस बात का सबसे बढ़िया उदाहरण है कि सड़क भी खेल का मैदान है- यह कथन सत्य है या नहीं । सही प्रत्युत्तर यह है कि यह कथन "गलत" है ।

इस पाठ से यह शिक्षा मिलती है कि गली में खेलना खतरनाक हो सकता है । बेशक यह शिक्षा सही है लेकिन इससे उन अधिकांश शहरी बच्चों की वास्तविकता की अवहेलना होती है जिनके पास खेलने के लिये सिवाय गली के और कोई स्थान नहीं होता है । स्थान की कमी, बहस का मुद्दा नहीं है अपितु इस सार्वभौमिक सच को स्वीकार करने की जरूरत है कि बच्चे गली में खेल कर अधिक आनन्द अनुभव करते हैं । बाल- केन्द्रित दृष्टिकोण से लिखित पाठ में बच्चों को प्राप्त होने वाली प्रसन्नता का आदर अवश्य होना चाहिये । यह तर्क देना कि इस प्रकार की मान्यता को स्वीकार करना लापरवाही को स्वीकार करने के बराबर है अथवा यह कहना कि गली में खेलने के जोखिम के बारे में बच्चों को चेतावनी देना आवश्यक है मुद्दे को महत्वहीन बनाने का प्रयास है । गली में खेलने वाला प्रत्येक बच्चा ऐसा करने के खतरों से अवगत होता है । विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों के कीमती पृष्ठों को इस प्रकार के महत्वहीन उपदेशों में नहीं गंवाना चाहिए । परन्तु आजकल की प्रथमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में बचपन के स्वर्णिम वर्षों को विचारों तथा वस्तुओं के बारे में जिज्ञासा उत्पन्न करने के स्थान पर महत्वहीन उपदेशों की भरमार होती है ।

05. भाषा की पाठ्य- पुस्तकें

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारी पाठ्यपुस्तकें बच्चों के दृष्टिकोण से नहीं लिखी जाती । न तो सम्प्रेषण का ढंग और न हीं वर्णित पदार्थों की
में रखती है । भाषा के उपर्युक्त अंतिम आयाम की व्यख्या करने की आवश्यकता
न ही प्रयुक्त भाषा बच्चे को पाठ्यक्रम में वर्णित संसार के केन्द्र
है । विचार- विमर्श के दौरान समिति ने जिन व्यक्तियों तथा वर्गों के साथ बातचीत की उनमें से अधिकांश ने हिन्दी क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली पाठ्यपुस्तकों की शब्दावली और वाक्य विन्यास की आलोचना की ।

प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के लिए प्रयुक्त पाठ्य पुस्तकों में ही नहीं अपितु मातृभाषा के शिक्षण के लिए प्रयोग की जा रही पाठ्य-पुस्तकों में भी ऐसी रूढ़बद्ध शैली में शब्द योजना और वाक्य संरचना मिलती है कि बच्चे प्रयुक्त भाषा को अपनी भाषा नहीं मान पाते हैं । पाठ्य-पुस्तकों में बच्चों तथा अन्य लोगों द्वारा आम तौर पर अपने वातावरण में इस्तेमाल की जाने वाली शब्दावली, मुहावरों तथा अभिव्यक्ति शैली के दर्शन नहीं होते हैं । यह बात हास परिहास पर भी लागू होती है । पाठ्यपुस्तक की कृत्रिम, शैली के कारण जीवन से दूरी बढ़ती है । अतः पाठ्य-पुस्तकों में प्रयुक्त भाषा स्कूली ज्ञान से जुड़ी "बोझ" की भावना को और ज्यादा बढ़ाती है ।

06. <u>अवलोकन की अवहेलना करना</u>

अनुभव के स्थान पर तस्वीरों का प्रयोग करना पाठ्य-लेखन में एक अत्यन्त चिन्ताजनक प्रवृत्ति है जो बोझ की समस्या को अधिक गंभीर बनाती है । हमने पाठ्य-पुस्तकों में यह पाया कि बच्चों को बाहर ले जाकर प्रकृति में किसी वस्तु का अवलोकन कराने के स्थान पर उस वस्तु के चित्र का अवलोकन करने के लिए कहा जाता है । उदाहरणार्थ कक्षा पांच की विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में यह कहा गया है कि: "केक्टस पौधे के चित्र को देखें और इसकी मोटी हरी संरचना का अवलोकन करें .... ऐसे अनुदेश से अध्यापक अथवा बच्चे के मन में यदि कक्षा या स्कूल में वास्तविक केक्टस का पौधा लाने अथवा उगाने की इच्छा है तो वह भी समाप्त हो जायेगी । इस तथ्य का सबसे दुखःद उदाहरण हमारे सामने उस समय आया जब एक प्राइवेट प्रकाशकने इस बात का दावा किया कि उसने बच्चों को बाहर ले जाकर पंछियों को दिखाने का सुझाव देने वाली अध्यापक संदर्शिका को ऐसी पाठ्य-पुस्तक में परिवर्तित कर दिया है जिसमें सभी पंछियों के चित्र व नाम दिये हैं

यह उदाहरण विशेष तौर पर कष्टप्रद है क्योंकि इसमें शिक्षक को कक्षा की चार दीवारी से बाहर निकलने के लिये करने सम्बन्धी सुझाव की अवहेलना करते हुए प्रोत्साहित पाठ्य पुस्तकों से ही सब कुछ मौखिक रूप से बढ़ाने की प्रचलित एवं पारम्परिक प्रणाली को प्राथमिकता दी गई है । §शिक्षक गाइड बहुत कम बनी हैं और जिन विषयों में इन्हें कुछ राज्यों में तैयार किया गया है वहां इनके वितरण की संतोषजनक व्यवस्था नहीं की गयी § हाल ही के वर्षों में, कुछ पाठ्य-पुस्तकों में विज्ञान शिक्षण के अनिवार्य अंग के रूप में अवलोकन और अन्वेषण सम्बन्धी शब्दावली को अपनाया गया है । परन्तु वस्तुतः यहां भी अवलोकन के लिए सभी अनुदेश इस प्रकार के कथन के साथ समाप्त होते हैं कि यदि बच्चे अवलोकन करें तो वे क्या देखेंगे ? इस प्रकार अध्यापक तथा बच्चों के लिये किसी पदार्थ को ढूंढ़ कर उसका अवलोकन करने की आवश्यकता ही नहीं रहती ।

07. <u>पाठ्यचर्या की संरचना</u>

विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम की व्यवस्था में बाल केन्द्रित दृष्टिकोण की अनुपस्थिति अखरती है । हमें अभिभावकों तथा शिक्षकों से बड़ी संख्या में यह शिकायतें मिली हैं कि पाठ्यक्रमों की विषयवस्तु में संगठन और तालमेल की कमी है । पुनरावृत्ति के अलावा माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों के पाठ्यक्रमों में काफी अन्तराल है । संरचना में ये कमियां स्पष्ट तौर पर रटने तथा अपर्याप्त समझ का कारण बनती हैं जिसके फलस्वरूप शिक्षाक्रम भार की भावना तीव्र होती है माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तरों के विज्ञान पाठ्यक्रमों में व्याप्त अंतराल स्पष्ट तौर पर दिखाई पड़ता है । इसलिये दसवीं कक्षा की परीक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करने के बावजूद उन्हें ग्यारहवीं कक्षा में कठिनाई का सामना करना पड़ता है ।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों, विशेषकर भौतिकी की पाठ्यपुस्तकों में अमूर्तता के स्तर में एकदम बहुत ज्यादा वृद्धि हो जाती है । इससे स्पष्ट है कि, उच्चतर माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने वालों को निचली कक्षाओं के पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की पर्याप्त जानकारी नहीं थी । वास्तव में माध्यमिक कक्षाओं (नवीं, दसवीं) के लिए पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में संलग्न व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श करने का उन्हें कोई अवसर ही नहीं मिला ।

अवधारणाओं और सूचनाओं की पुनरावृत्ति से भी बोरियत और बोझ की भावना पैदा होती है । पुनरावृत्ति की आवश्यकता पाठ्यक्रम के दोषपूर्ण ढांचे के कारण ही महसूस होती है । प्राथमिक कक्षाओं में विचार और सूचना संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं जिससे पाठ्यपुस्तक भ्रामक रूप से सरल नजर आती हैं । और बाद की कक्षाओं में, उन्हीं विचारों को कुछ विस्तार के साथ दोहराया जाता है । जिसके फलस्वरूप बच्चे यह मानने लगते हैं कि पुनरावृत्ति के द्वारा विचारों को कम किया गया है । उदाहरणतया, पोषण और स्वास्थ्य के अध्ययन में वस्तुतः वही विचार और सूचना तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी और दसवीं कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रम में दी गई है । यहां तक कि पाठों के अंत में दिए गए प्रश्न भी प्रायः एक ही तरह के होते हैं । स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम की संरचना पर सावधानीपूर्वक विचार नहीं किया गया । पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें बनाने के कार्य में शामिल वरिष्ठ विशेषज्ञों ने हमारी समिति को बताया कि विभिन्न स्तरों (माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक) का पाठ्यक्रम तैयार कर रहे विशेषज्ञों का एक दूसरे के साथ कोई संपर्क नहीं था । पाठ्यक्रम के ढांचे में अन्तः स्थापित और परंपरा द्वारा सुदृढ़ पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए विधि सम्बन्धी कमियों का उल्लेख करना जरूरी नहीं है ।

इस मामले में इतिहास का उदाहरण सबसे अधिक स्पष्ट है । यद्यपि यह सामाजिक विज्ञान नामक विषय का एक भाग है, यह पाठ्यक्रम बोझ का मुख्य उदाहरण प्रस्तुत करता है । इतिहास की पाठ्यपुस्तकों की लेखन शैलि में आए अनेक परिवर्तनों के बावजूद, इतिहास का पाठ्यक्रम बच्चों के लिए असंतोषप्रद और निरर्थक बना हुआ है । इससे इतिहास शिक्षण का उद्देश्य पूरा नहीं होता क्योंकि बच्चे इतिहास को अपनी विरासत से जोड़ने में असमर्थ रहे हैं । अपेक्षा यह की जाती है कि कक्षा 6 से 8 के दौरान प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के संपूर्ण ज्ञात इतिहास का अपने मस्तिष्क में पूर्ण चित्र बना पायेंगे । चूंकि इन कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में विस्तृत काल अवधि के इतिहास का वर्णन करना होता है इसलिये इनमें विषयवस्तु की सघनता अधिक होती है । जिसका मतलब है कि ऐतिहासिक काल बहुत संकुचित हो जाता है । उदाहरणतया, कुछ वाक्यों में ही अनेक वर्षों के इतिहास का वर्णन कर दिया जाता है । यह संक्षिप्त शैली बच्चे को "जैसा भी वर्णन किया गया है उसे वैसा ही स्वीकार" करने के लिए बाध्य करती है । पाठ्यपुस्तकों में विस्तारपूर्वक विषय सामग्री को प्रस्तुत नहीं किया जाता ताकि वह बच्चा तर्क अथवा चिन्तन के लिए उसे आधार बना सके बल्कि उससे अपेक्षा की जाती है कि वह तीन वर्षों में भारत के "संपूर्ण" इतिहास को एक बड़े आकार वाली पाठ्यपुस्तक से पढ़ लेगा । इस प्रकार की पाठ्यपुस्तक बच्चे को (और शिक्षक को) अध्ययन करने अथवा कोई दलील तैयार करने में समय नष्ट करने की बजाय यथा संभव "याद करने" के लिए बाध्य करती है ।

इतिहास के पाठ्यक्रम की इस सामान्य समस्या के अलावा, हमने यह पाया है कि कुछ राज्यों में इतिहास पाठ्यक्रम की विषय वस्तु संक्षिप्त सूचनाओं का संग्रह

होते हैं जो इस प्रकार हैं :

1. आधुनिक युग, 2. यूरोप में पुर्नजागरण, 3. यूरोपियनों द्वारा विश्व का विस्तार, 4. यूरोप में सुधार आंदोलन, 5. 12 वीं शताब्दी में अंग्रेजी क्रांति, 6. भारत, 7. भारत में ब्रिट्रिश हुकूमत की स्थापना और 1857 तक विकास (संक्षिप्त वर्णात्मक रूप में), 8. अट्ठारहवीं शताब्दी में विश्व, 9. 1815 से यूरोप, 10. क) 1911 तक चीन में हुई गतिविधियां, ख) 1914 तक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में जापान की उन्नति, 11. ब्रिट्रिश साम्राज्य के अधीन भारत 1858-1914, 12. प्रथम विश्व युद्ध, 13. बोलशेविक क्रांति, 14. यूरोप 1991-1939, 15. द्वितीय विश्व युद्ध, 16. भारत-1991-1947, 17. क) चीन में क्रांति 1911-1949, ख) के बाद दक्षिण पूर्व एशिया में क्रांति, ग) द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पराधीन देशों में असन्तोष और राष्ट्रवाद का विस्तार ।

पाठ्यक्रम में ही दिए गए निर्देशों के अनुसार संपूर्ण पाठ्यक्रम को प्रस्तुत करने के लिए पाठ्यपुस्तकों में पृष्ठ संख्या केवल 135 होगी । इससे स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम बनाने वाले मानते हैं कि विषय सामग्री को संक्षेप में प्रस्तुत करने से पाठ्यपुस्तक की पठनीयता तथा विषयवस्तु की ग्राहयता पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

08. सब कुछ पढ़ाना

इस प्रकार के सघन पाठ्यक्रम की समस्या सभी विषयों में है । भूगोल में यह समस्या छठी से आठवीं कक्षाओं में प्रादेशिक भूगोल के अन्तर्गत सभी महाद्वीपों के अध्ययन को शामिल करने के कारण है । गणित तथा प्राकृतिक विज्ञानों में सूचनाओं की सघनता के कारण रूचि से पढ़ने की बात तो अलग है, समझ के साथ सीखना भी वस्तुतः असंभव है । समस्या को स्पष्ट करने के लिए इन विषयों से बड़ी संख्या में

उदाहरण दिए जा सकते हैं । कक्षा 7 की विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के एक पृष्ठ पर निम्नलिखित सभी बातें दी गई हैं : समय अवधि की परिभाषा, प्रति सैकेण्ड के घटाव-बढ़ाव (आसुलेशन) का पता कैसे लगाएं, आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) की परिभाषा, आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) की "हर्टज" यूनिट, यह विचार कि कम्पन में एम्पलिट्यूड और फ्रीक्वेंसी होती है, इनकी परिभाषाएं, कम्पन के रूप में ध्वनि की संकल्पना, प्रबलता एवं तारत्व और अन्ततः फ्रीक्वेंसी, (तारत्व (पिच) परिभ्रमण (रोटेशन) और तनाव (टेंशन) की गति से इसका संबंध । हम यह उदाहरण इसलिए नहीं दे रहे हैं कि इसकी जांच होनी चाहिए अपितु उस सशक्त प्रवृत्ति अथवा विचारधारा के प्रमाण के रूप में दे रहे हैं जो पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के आयोजकों को विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों की पढ़ने की क्षमता और एक औसत स्कूल में सम्बंधित विषय के शिक्षण के लिए उपलब्ध समय पर ध्यान दिए बिना अधिकाधिक विषयवस्तु शामिल करने के लिए प्रेरित करती है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति को कार्यान्वित करने हेतु हाल .. में ही तैयार की गयी ग्याहरवीं और बारहवीं कक्षाओं की विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों की इन्हीं कारणों की वजह से व्यापक आलोचना हुई है । विज्ञान विषयों को पढ़ने वाले बच्चों को उनके शिक्षकों द्वारा प्रायः यह कहा गया है कि वे निजी ट्यूटरों की तलाश करें, इसके पीछे तर्क यह है कि कक्षा में पढ़ाने के लिए ही इतना समय ही नहीं मिलता कि पाठ्यक्रम पूरा किया जा सके । इसके अलावा पाठ्यक्रम का कुछ भाग तो शिक्षक की क्षमताओं से भी परे होता है । हमें सूचित किया गया कि समय की कमी के कारण प्रकाशन के लिए पाण्डुलिपियां भेजते समय, संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत विषय वस्तु का सम्पादन तथा पुनरीक्षण स्पष्टतया कुछ जल्दबाजी में किया गया है । कदाचित तर्क यह भी दिया जा सकता है कि प्रतिभाशाली छात्रों और शिक्षकों ने इन पाठ्यपुस्तकों को पसन्द किया है । यदि वास्तव में यह सही है तो साधारण स्कूलों में पढ़ने वाले अधिसंख्य बच्चों की नियति के बारे में चिन्ता करना आवश्यक है ।

गणित विषय में, बच्चे के स्कूली जीवन के आरंभ से ही परिस्थिति गंभीर नजर आती है । बच्चे में गणित संबंधी चिन्तन क्षमता के विकास के बारे में सुपरिचित तथ्यों पर कम ध्यान देते हुए एक साथ ही बहुत सारी अमूर्त परिकल्पनाएं/बातें समाविष्ट कर दी जाती हैं । बच्चों से एक बहुत बड़ी संख्या वाले गणित के सवाल को छोटी आयु मे ही हल

-(इसकी तुलना में, एक ब्रिटिश बच्चा इस कक्षा में पूरा वर्ष संख्या 20 तक सीखने में व्यतीत करता है), कक्षा 2 में 1000 तक, कक्षा 3 में 10,000 तक, कक्षा 4 में दस लाख तक तथा कक्षा 5 में एक करोड़ तक गिनती करने की अपेक्षा की जाती है। यद्यपि बच्चे के जहन में लम्बाई की अवधारणा स्थापित होने के बाद ही भार और बोझ की अवधारणा विकसित होती है तथापि सात अथवा आठ वर्ष की छोटी आयु में इन तीनों को एक साथ (प्राय:अध्ययन की एक ही एकक में)आरंभ कर दिया जाता है और यह आशा की जाती है कि बच्चे मानक एककों से इनकी गणना कर लेंगे। स्थूल पदार्थ आधारित चिन्तन योग्यता जो प्रारंभिक स्कूल के बच्चों की विशेषता है, यह अपेक्षा करती है कि सामग्रियों के विविध रूप का प्रयोग करके वस्तुओं और क्रियाकलापों को नियंत्रित किया जाये (एक धारणा को "विस्तार" करने के लिए, उदाहरण के तौर पर किसी एक सामग्री अथवा वस्तु से उसका संबंध विच्छेद) ऐसे क्रियाकलापों को उस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत इकट्ठा करना असंभव है जिसमें अवधारणाएं तीव्र गति से सम्मिलित की जाती हैं। इस स्तर के बच्चे को आनुपातिक तर्क-वितर्क मुश्किल सा लगता है लेकिन फिर भी चौथी और पांचवी कक्षाओं में प्रतिशत और अनुपात शुरू कर दिए जाते हैं। मिडिल और उच्चतर कक्षाओं में अधिगम के मनोविज्ञान की बजाए गणित के तर्क शास्त्र को पाठ्यक्रम के आधार के रूप में अपनाने की प्रवृत्ति अत्यधिक प्रबल है। अतः गणित ने एक गूढ़ एवं रहस्यमय विषय की छवि बना ली है जो बच्चे के वास्तविक जीवन में बहुत ही कम मात्रा में काम आता है।

09. <u>कम उम्र से शिक्षा का आरंभ करना</u>

शिक्षाक्रम चिन्तन एवं विचारधारा की जिन साधारण समस्याओं की हमने अपनी रिपोर्ट के इस भाग में चर्चा की है उनकी झलक नर्सरी शिक्षा के क्षेत्र में देखी जा सकती है। सरकारी संस्तुति के बावजूद कि इस स्तर पर कोई पाठ्यपुस्तक नहीं होनी चाहिये, शहरी क्षेत्रों के नर्सरी शिक्षक और अभिभावक पर औपचारिक अध्ययन और पाठ्यपुस्तकों का बोझ छोटे बच्चों पर डालने के लिए अपने आपको

बाध्य महसूस करते हैं । बाध्यता की भावना इस भ्रांति से उत्पन्न होती है कि यदि किसी बच्चे का शैक्षिक प्रशिक्षण कम उम्र से प्रारंभ नहीं किया जायेगा तो वह बाद के वर्षों में तेज गति के शिक्षण तथा प्रतियोगी भावना के साथ निर्वाह नहीं कर सकेगा । इस गलत तर्क के परिणामस्वरूप नर्सरी तथा प्राथमिक स्कूलों में बेहूदा और हानिकारक क्रियाकलापों का आयोजन होता है । कम आयु में ही सुन्दर ड्राइंग, लेखन तथा सूचनाओं को कण्ठस्थ करने पर बल देना । अन्तर्निहित प्रेरणा तथा बच्चे की स्वाभाविक क्षमताओं का जितने बड़े स्तर पर गला घोंटा जा रहा है उसका सही सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता । मानव संसाधन विकास की हमारी राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को प्रतिदिन हमारे नर्सरी तथा प्राथमिक स्कूलों में चुनौती दी जाती है ।

10. मात्र शहरी समस्या ही नहीं ।

रिपोर्ट के इस भाग में हमने जिस समस्या का पता लगाने की कोशिश की है वह शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं । ग्रामीण भारत में भी बच्चों की शिक्षा की यह समस्या है यद्यपि वहां की अधिक आधारभूत समस्याएं जैसे स्कूलों की अत्यंत खराब हालत, शिक्षकों अनुपस्थिति आदि पाठ्यक्रम के बोझ की समस्या पर आवरण डाल सकती हैं । शिक्षा पूरी किये बिना स्कूल छोड़ कर जाने वाले बच्चों की समस्या जिसके साथ हमारे नीति निर्माता एक लंबे समय से जूझ रहे थे । हमारी दृष्टि से इस रिपोर्ट में प्रस्तुत पाठ्यक्रम का परिदृश्य भी उसका एक प्रमुख कारण है । आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के साथ साथ आनन्द और अन्वेषण के बिना सीखने के शिक्षणविधियों के कारण भी बच्चे स्कूल छोड़ जाते हैं। जैसा कि हमने पहले ही संकेत किया है. पाठ्यपुस्तकों में शहरी, मध्यम वर्गीय जीवन शैली की ओर प्रतीकात्मक झुकाव है इससे भी ग्रामीण बच्चों का स्कूली अनुभवों के साथ सम्पर्क कमजोर तथा अस्थायी ही होता है । जिस संबंध को ग्रामीण भारत के अनेक भागों में प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी शिक्षा व्यवस्था के साथ स्थापित करने का प्रयास करते हैं, उस सूक्ष्म तथा सुकुमार संबंध पर अध्यापकों तथा उपलब्ध सामग्री के स्तर का भी बहुत प्रभाव पड़ता है ।

समस्या की जड़ें

01. ज्ञान बनाम सूचना

संपूर्ण देश में पाठ्यचर्या तथा पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध लोगों के साथ विचार-विमर्श के दौरान अनेक लोगों ने अध्याय 2 में उल्लिखित मुद्दे को न्यायोचित ठहराने के लिए बार-बार यह तर्क प्रस्तुत किया कि भारत को विकसित देशों के बराबर पहुंचना है जहाँ पर ज्ञान का काफी विस्तार हो चुका है । अतः हमारे बच्चों को पहले की अपेक्षा अधिक सीखना चाहिए । इसका आशय यह है कि पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकों में नए विषय, नई अवधारणाएं तथा नई सूचनाएं सम्मिलित करनी चाहिये । यह तर्क इतना व्यापक तथा दृढ़ मालूम पड़ता है कि इसमें विश्वास करने वाले इस पर बहस की आवश्यकता ही नहीं समझते । जब उन्हें यह बताया जाता है कि विकसित देशों के बच्चे हमारे बच्चों की अपेक्षा कुछ अवधारणाओं को देर से सीखते हैं (उदाहरण के तौर पर, रसायन विज्ञान में संयोजकता का सिद्धांत हमारे बच्चों को अब कक्षा 7 में पढ़ाया जाता है जबकि यूरोपीय बच्चे नवीं कक्षा से पहले इसके बारे में कुछ नहीं पढ़ते हैं) तो "ज्ञान के विस्फोट" के समर्थक यह कहते हैं कि यूरोपियन समाज हम से पहले ही आगे है इसलिए वे अपने बच्चों को धीमी गति से शिक्षा देने की स्थिति में हो सकते हैं । भूगोल के बारे में जब यह संकेत किया जाता है कि यूरोपियन तथा उत्तरी अमेरिका के बच्चे प्रत्येक महाद्वीप का अध्ययन नहीं करते हैं (इसके बजाय केवल चुनिंदा देशों का गहराई से अध्ययन करते हैं) तो उत्तर दिया जाता है कि पश्चिमी समाज के बच्चों को स्कूल के बाहर भी सीखने के अनेक स्रोत उपलब्ध होते हैं जबकि हमारे देश के अधिकांश बच्चे विश्व के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए स्कूल पर ही निर्भर रहते हैं । अन्य स्कूल विषयों के पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों की वर्तमान स्थिति को न्यायोचित ठहराने के लिए भी "ज्ञान के विस्फोट" के सिद्धांत का ही सहारा लिया जाता है ।

"ज्ञान के विस्फोट" संबंधी मान्यता इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि ज्ञान तथा सूचना एक दूसरे के पर्याय हैं । यह सच है कि बीसवीं शताब्दी में नए तथ्य प्राप्त करने तथा उन्हें सुरक्षित रखने की मानवीय क्षमता में व्यापक वृद्धि हुई है परन्तु यह कहना कठिन है कि सूचना को संघटित करने तथा पैदा करने में सहायक अवधारणाओं और सिद्धांतों में भी व्यापक वृद्धि हुई है। §यह अलग बात है कि पूर्व उपनिवेशीय समाज में अक्सर लोग यह मानते है कि सभी नया ज्ञान "अन्यों" के द्वारा निर्मित किया जा रहा है और हमारा कार्य मात्र उसे सीखना और उसका उपयोग करना है §बच्चों की शिक्षा में विशाल सूचना की जानकारी रखने के बजाय सिद्धांत निर्माण तथा अवधारणाओं के विकास के लिये क्षमताओं की वृद्धि पर बल देना चाहिये । "ज्ञान के विस्फोट " सम्बंधी विचार के कारण यह समझने में कठिनाई होती है कि बचपन में सीखना और विभिन्न विषयों के संबंध में "सूचना" एकत्र करना दोनों एक समान नहीं है । यदि हम यह कहते हैं कि बच्चे को तथ्य "क" की जानकारी है तो हम पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि इस कथन की व्याख्या करने के तीन सम्भावित तरीके हैं :-

§।§ बच्चे को तथ्य "क" के संबंध में सूचना दी गई है ।

§।।§ बच्चा तथ्य "क" के संबंध में सूचना पुनः उद्धरित कर सकता है ।

§।।।§ बच्चे ने तथ्य "क" को समझ लिया है और/इस सूझबूझ का प्रयोग वह अन्य मामलों में कर सकता है ।

हमारे देश में औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में पहले दो अर्थ ही सही माने जाते हैं और पहले का दूसरे के आधार के रूप में प्रयोग किया जा रहा है । प्रायः सूचनाओं की प्राप्ति को ही गलती से "ज्ञान" मान लिया जाता है ।

इस प्रकार की भ्रान्ति से शिक्षा के एक उद्देश्य "सूझबूझ" की अवहेलना हो जाती है । यह कहना ठीक होगा कि सूझबूझ की अवहेलना हमारी शिक्षा

व्यवस्था में इतनी गहराई से बैठ गई है कि कोई भी बच्चा पुस्तकों तथा क्लासरूम में बताई गई बातों को समझे बिना किसी भी परीक्षा को पास कर सकता है । बहुत . हद तक तथा पाठ्यपुस्तकों में सूचना अथवा चीजों के "नामों" में पाठ्यक्रम पर अत्यधिक बल देने के कारण यह स्थिति उत्पन्न होती है । नामों को याद करने के अलावा बच्चों के पास और कोई विकल्प नहीं होता है क्योंकि उन्हें किसी परीक्षा में सिद्ध करना होता है कि उन्होंने बात को समझ लिया है । सभी प्रकार के दावों के बावजूद कि परीक्षाओं में सुधार हो गया है, अभी भी उनमें इस बात की जांच करने पर ही बल दिया जाता है कि बच्चों को ठीक सूचना ऽअर्थात चीजों के नाम, परिभाषाएं, उदाहरण आदिऽ का पता है या नहीं । स्मृति प्रश्नों की संख्या उन प्रश्नों की तुलना में अधिक होती है, जो अंदाज लगाने, मूल्यांकन करने अथवा निर्णय करने और अपरिचित संदर्भ में किसी विचार का प्रयोग करने में बच्चे की क्षमता की जांच करते हैं । कक्षा 10 तथा कक्षा 12 के अंत में ली गई बोर्ड परीक्षाएं नौकरशाही सिद्धान्तों पर आधारित हैं और मूलतः उनका स्वरूप गैर शैक्षिक है ऽचूंकि बच्चा कभी नहीं देखता कि उसे जो अंक प्राप्त हुए उनका आधार क्या था । इसके अतिरिक्त परीक्षाएं मुख्य रूप से भय का स्रोत बनी हुई है क्योंकि इनके कारण बच्चों को अत्यधिक मात्रा में सूचनाएं याद करनी पड़ती हैं ताकि वह परीक्षा में उन्हें तुरन्त लिख सके । वर्तमान परीक्षा पद्धति का प्रभाव पूर्व कक्षाओं में स्कूलों द्वारा ली गई वार्षिक परीक्षाओं और टेस्टों तथा क्लासरूम के अध्यापन पर पड़ता है । भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं की दाखिला परीक्षाओं में स्मृति प्रश्नों पर कम बलऽयद्यपि वे स्पीड पर बल देते हैं ऽ के बावजूद इनके कारण उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के कुछ विषयों में अत्यधिक पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है ।

02. <u>कक्षाओं की वास्तविकताओं से विशेषज्ञों की दूरी</u>

पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों का संशोधन और नवीनीकरण करते समय सामान्यता विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के परामर्श से नए विषयों एवं सूचनाओं को जोड़ा जाता है । ये विशेषज्ञ विश्व – विद्यालय स्तरीय शिक्षक होते हैं जिनमें कभी–कभी उच्च कोटि के अनुसंधानकर्ता भी शामिल होते हैं । पाठ्य –पुस्तकों के लेखन अथवा संशोधन में उनकी भागीदारी वास्तव में प्रशंसनीय है, परन्तु बच्चों तथा उनकी शिक्षा के बारे में उनकी जानकारी प्रायः बहुत कम होती है । स्कूल के शिक्षकों के साथ उनका सम्पर्क भी ऐसे कुछ शिक्षकों तक ही सीमित होता है जो पाठ्यक्रम तथा पाठ्य – पुस्तक समितियों के सदस्यों के रूप में कार्य करते हैं । सामाजिक तथा सरकारी पदवी में अंतर के कारण इन समितियों में कार्य कर रहे स्कूल शिक्षकों के लिए कठिन होता है कि वे पाठ्यक्रम की शिक्षणीयता और पाठ्य पुस्तकों की शैली के बारे में अपने विचार तथा अनुभव विशेषज्ञों के समक्ष निस्संकोच प्रस्तुत कर सकें ।

शिक्षणीयता से अभिप्राय विषयवस्तु की उस मात्रा से है जिसे एक औसत शिक्षक पैंतीस मिनट के स्कूल कालांश में सुविधाजनक गति से पूरा कर सकता हैं । इस कसौटी पर यदि हमारी पाठ्य – पुस्तकों को परखा जाए तो पता चलेगा कि उनमें से अधिकांश विषयों विशेष रूप से विज्ञान, गणित और समाज विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों को उपलब्ध समय में पढ़ाया नहीं जा सकता । एक शैक्षिक सत्र में किसी विषय के लिये आवंटित पैंतीस मिनट के कालांश में अर्थपूर्ण तरीके से पढ़ाई जा सकने वाली विषयवस्तु की मात्रा के मुकाबले पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित सूचनाओं एवं अवधारणाओं का भार अधिक होता है । ऐसा लगता है कि पैंतीस मिनट के कालांश को ध्यान में रखते हुए वर्ष भर में उपलब्ध समय का हिसाब लगा

कर पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में दी जाने वाली विषयवस्तु की मात्रा का निर्धारण नहीं किया जाता । वास्तव में पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकें इस बात के प्रमाण हैं कि इनको तैयार करने वाले विशेषज्ञों को स्कूल तथा कक्षाओं की वास्तविकताओं की पर्याप्त जानकारी नहीं होती । ऐसी सम्भावना है कि ये विशेषज्ञ बच्चों तथा उनके द्वारा नई बातों को सीखने की प्रक्रिया से भी अनभिज्ञ होते हैं । पाठ्य पुस्तकों में साधारण बच्चे की उस बहुमुखी प्रतिभा की झलक नहीं मिलती जिसके द्वारा वह प्राकृतिक व सामाजिक वास्तविकताओं को समझने का प्रयास करता है । प्रायः पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार तैयार की जाती हैं कि इनमें नई सूचनाएं और अवधारणाएं उत्तरोत्तर जुड़ती चली जाती हैं । इस पद्धति काअनुसरण स्कूल की पूरी अवधि में होता है जैसा कि कक्षा 7 में कोई छूटा हुआ विषय कक्षा 9 में दुबारा से शामिल कर लिया जाता है । कभी कभार ही विविध तरीकों से ज्ञान को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है ।

हम महसूस करते हैं कि यदि पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकें तैयार करने वाले विशेषज्ञों को बच्चों तथा उनके शिक्षकों के साथ काम करने का अवसर मिले तो वे बच्चों की सीखने की विधियों के बारे में अन्तर्दृष्टि विकसित कर पायेंगे । ऐसा करने से उन्हें उन विधियों के अनुरूप पाठ्य - पुस्तक लेखन में भी सहायतामिलेगी । बच्चों के साथ संपर्क एवं संवाद के परिणाम स्वरूप विशेषज्ञ अपने अन्दर बच्चों द्वारा प्रयुक्त जीवन्त तथा बहुमुखी विधियों के प्रति कुछ संवेदनशीलता विकसित कर पायेंगे । इस प्रकार के संपर्क के दौरान विशेषज्ञ यह महसूस कर सकते हैं कि उन्हें पाठ्य - पुस्तक लेखन आरम्भ करने से पहले बाल मनोविज्ञान, विशेष रूप से सीखने के मनोविज्ञान के बारे में ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए । इससे स्पष्ट होता है पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तक लेखन को अंशकालिक उत्तरदायित्व के स्थान पर गम्भीर कार्यकलाप समझना चाहिये ।

03. केन्द्रीकृत चरित्र

शिक्षाक्रम योजना और पाठ्य पुस्तक निर्माण के विशिष्ट संदर्भ में हम यह महसूस करते हैं कि अनावश्यक रूप से केन्द्रीकृत होने के कारण शिक्षा क्रम में अनेक समस्याएं पैदा हो गई हैं । ऐसा लगता है कि केन्द्रीकरण को तर्कसंगत ठहराने के पक्ष में बड़े पैमाने पर भ्रांतियां मौजूद हैं ? इस भ्रम के परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकों की विषय वस्तु को सीखने तथा परीक्षण के मानदंडों का पर्याय माना जाता है । इसी भ्रम के आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि शिक्षा स्तर की एकरूपता को सुनिश्चित करने के लिये सारे राज्य में, यहाँ तक कि सारे देश में एक ही पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकें होनी चाहियें । इस प्रकार का तर्क उस असंतुलित ढंग को पूर्णतः नजरअंदाज कर देता है जिसके अन्तर्गत शिक्षा का स्तर ऐसी परीक्षा प्रणाली के द्वारा निर्धारित किया जाता है जिसमें कौशल तथा कौशल का उपयोग करने की क्षमता की बजाए सूचना परीक्षण पर बल दिया जाता है । निश्चित ही यह "कैच 22" स्थिति है । परीक्षा प्रणाली कौशल को तो नज़रअंदाज करती है परन्तु रटी हुई सूचनाओं, परिभाषाओं और विवरणों पर बल देती है । इसीलिए विभिन्न वातावरणों, जरूरतों तथा सुविधाओं के साथ न्याय न कर सकने वाला पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें केवल यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक बन जाती है कि सभी बच्चे समान "तथ्यों" को जान सकें ।

इस चक्रीय तर्क ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमें पाठ्यक्रम तथा पाठ्य- पुस्तकें तैयार करने का कार्य राज्य की राजधानियों तथा नई दिल्ली तक ही सीमित रह गया है । क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तरों पर शिक्षक शिक्षाक्रम तथा शैक्षिणक सामग्री विकास को अपने कार्य का अंग नहीं मानते हैं । वास्तव में ये कार्य हमारे देश में जिस तरीके से परिभाषित तथा परंपरागत रूप से किए जाते रहे हैं, उससे यह शिक्षकों के कार्यक्षेत्र में नहीं आते हैं । शिक्षक तो केवल यह मानता है कि उसका एकमात्र दायित्व पाठ्यक्रम में सम्मिलित ज्ञान की व्याख्या करना है । प्राइमरी और माध्यमिक स्तर के शिक्षक को पाठ्य- पुस्तकों के जरिए ही पाठ्यक्रम का पता चलता है क्योंकि हमारे यहां पाठ्यपुस्तक ही वास्तव में पाठ्यक्रम होती है । पाठ्यक्रम को "पूरा करने " का अर्थ है पाठ्य पुस्तक को पूरा करना अर्थात पूरी पुस्तक को पढ़ाना । इस प्रकार की धारणा के परिणामस्वरूप कक्षा की जिंदगी एक संकुचित दायरे में बन्द होकर रह जाती है । कक्षा में दिया जाने वाला ज्ञान बच्चों के अपने अनुभव और विश्व सम्बंधी ज्ञान से पूरी तरह स्वतंत्र होता है । इस प्रकार के असंयोजन के परिणामस्वरूप बच्चे ज्ञान को दो श्रेणियों में विभाजित करना प्रारंभ कर देते हैं : एक वह जो स्कूल एवं कक्षा में प्रयुक्त होता है, तथा दूसरा वह जिसका उपयोग एवं प्रासंगिकता स्कूल के बाहर होती है । प्रथम श्रेणी में आने वाले ज्ञान में " जीवन्तता" नहीं होती है तथा वह उत्तरोत्तर रस्मी तथा बोझिल बनता जाता है । शिक्षक भी अपने मन में यह वर्गीकरण रखते हैं और उनमें से बहुत कम स्कूल की पढ़ाई और असली जिंदगी की परिस्थितियों का सामना करने के लिये आवश्यक ज्ञान के बीच तालमेल बिठाने में बच्चों की सहायता कर पाते हैं । पत्र लेखन के एक पाठ के बारे में एक ऐसा ही संपर्क सेतु

बनाने का प्रयास कर रही एक शिक्षिका से कक्षा 5 के बच्चे ने पूछा कि मैडम यह पत्र उस तरीके से लिखें जिस तरह से हम घर पर लिखते हैं अथवा स्कूल के तरीके से लिखें ?

इस तरह की स्थिति के लिए शिक्षक प्रशिक्षण तथा अनेक अन्य कारण उत्तरदायी होते हैं, फिर भी हम यह महसूस करते हैं कि इसका मूल कारण पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तक निर्माता का केन्द्रीकरण है । केन्द्रीय स्तर पर निर्मित की गई पाठ्य पुस्तक भले ही व्यावसायिक दृष्टि से उच्चकोटि की हो परन्तु यह कश्मीर अथवा आसाम के किसी गांव के जीवन के सूक्ष्म पक्ष को प्रतिबिम्बित नहीं कर सकती है । स्थानीय परिस्थितियों के साथ पाठ्य-पुस्तकों की विषय- वस्तु का तालमेल बिठाने के उद्देश्य से पाठ्यपुस्तक में आधिकारिक तौर पर कुछ परिवर्तन तो किया जाता है परन्तु यह किसी पाठ्यपुस्तक के मूल चरित्र को नहीं बदलता है । पाठ्यपुस्तक की अपेक्षा पाठ्यक्रम में स्थानीय परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन करना कम सम्भव होता है ।

04. पाठ्यवस्तु को पढ़ाने की परंपरा

कृत्रिम पाठ्यक्रम अथवा शिक्षा क्रम भार की समस्या के लिए पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तक विकास की प्रक्रिया में शिक्षकों की सहभागिता के लिए पर्याप्त अवसरों की कमी परोक्ष रूप से उत्तरदायी है । शिक्षक पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु को अपने कार्य की अंतिम सीमा तथा एक मात्र मार्गदर्शक मानकर इस समस्या को और भी ज्यादा गम्भीर बना देते हैं । जब सूत्र रूप में लिखित पाठ्य- पुस्तक घिसे पिटे और यांत्रिक ढंग से पढ़ाई जाती है तो निश्चित रूप से विद्यार्थियों

को बोरियत महसूस होती है । प्राय: यह देखा गया है कि अधिकांश अध्यापक शिक्षाक्रम को कक्षा की गतिविधियों में परिवर्तित करने में असमर्थ होते हैं । हम ऐसा इसलिये कह रहे हैं क्योंकि यह शिक्षाक्रम भारत की समस्या का एक प्रासंगिक पहलू है । हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हमारे यहां ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि शिक्षण कार्य तब तक नहीं सुधर सकता जब तक हमारे पास बेहतर पुस्तकें न हों । हम यह भी महसूस करते हैं कि पाठ्य- पुस्तक लेखन तथा प्रकाशन को सुधारने के उपाय के साथ-साथ शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार और शैक्षिक वातावरण का सृजन करने के उपाय करने चाहिए । शैक्षिक वातावरण ऐसा हो जिसमें अध्यापकों को अपने कार्य में रूचि लेने की प्रेरणा मिले । यह धारणा अब प्रासंगिक नहीं रही कि शिक्षक कक्षा में पाठ्य- पुस्तक की विषय वस्तु से भिन्न कुछ नहीं कर सकता । इस धारणा से ऊपर उठने की आवश्यकता है और इस पर आधारित स्वधारणा को भी अवश्य बदलना चाहिये । शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएं और जन संचार माध्यम दोनों ही इस परिवर्तन को संभव बनाने हेतु सहायता कर सकते हैं ।

शिक्षक के मन में अपने बारे में कोई नई छवि का निर्माण करने के संदर्भ में पूर्व सेवा शिक्षक प्रशिक्षण का काफी महत्व है, परन्तु इस क्षेत्र में सुधार करना कठिन प्रतीत होता है । शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा संस्थाओं को सुधारने के लिए किए गए पिछले प्रयास सीमित मात्रा में ही सफल सिद्ध हुए हैं । कुल मिलाकर शिक्षक प्रशिक्षण अब भी शिक्षा की मुख्य धारा से अलग ही बना हुआ है । अधिकांश स्थानों पर सेवाकालीन प्रशिक्षण भी एक ऐसा रस्म बन कर रह गया है जिसमें शैक्षिक विषय वस्तु के अभाव के साथ- साथ

.../-

किसी को प्रेरित करने की क्षमता भी नहीं होती । राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ﴾ राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जैसी परिकल्पना की गयी है﴿ को सांविधिक दर्जा प्राप्त होने से सम्भवत: उस कमजोर प्रशिक्षण पर कुछ प्रभाव पड़े जो आजकल बच्चों विशेष रूप से छोटे बच्चों के साथ काम करने के इच्छुक व्यक्तियों को उपलब्ध है ।

व्यापारिक दृष्टिकोण से चलाये जा रहे प्रशिक्षण कार्यक्रमों ﴾ पत्राचार द्वारा उपाधि प्रदान करने वाले ﴿ के बारे में प्रशासनिक एवं कानूनी उपाय करने की आवश्यकता है । इसी प्रकार नर्सरी शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों तथा संस्थाओं के संबंध में वर्तमान नीति का परीक्षण करने की जरूरत है । वास्तव में, उस समूची प्रशिक्षण नीति की समीक्षा करने की आवश्यकता है जिसमें प्रशिक्षण को दो वर्गों ﴾ डिग्री और गैर डिग्रीकार्यक्रम﴿ में विभाजित किया जाता है । और उन्हें स्कूल शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये मान्यता प्रदान की जाती है। हम आशा करते हैं कि एन०सी०टी०ई० सांविधिक दर्जा प्राप्त करने के बाद स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों के लिये व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करेगी ताकि उपर्युक्त दो वर्गों के बीच के अन्तर को समाप्त किया जा सके । ऐसा कार्यक्रम 19 वीं शताब्दी की " नार्मल " स्कूलों की संस्कृति पर आधारित वर्तमान कार्यक्रम से बिल्कुल भिन्न होगा । वर्तमान प्रशिक्षण कार्यक्रम अध्यापकों में बच्चों और उनकी सीखने की प्रक्रियाओं को समझने की क्षमता का विकास करने में सक्षम नहीं है ।

05. प्रतियोगिता पर आधारित सामाजिक माहौल

हमारा सामाजिक माहौल विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, प्रतियोगी भावना से ओत प्रोत है जो तेजी से हमारे जीने का ढंग बनती जा रही है । औद्योगिक रूप से विकसित देशों के समकक्ष पहुंचने की इच्छा ने इसे और अधिक बल प्रदान किया है । समाज के सभी वर्गों की आकांक्षाओं में वृद्धि हुई है और उन्होंने यह महसूस कर लिया है कि शिक्षा उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति करने का एक महत्वपूर्ण साधन है । इसके परिणामस्वरूप ऐसे अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में प्रवेश लेने की मांग बढ़ी है जो बच्चे को छोटी आयु से ही औपचारिक शिक्षा देना प्रारंभ कर देते हैं ।

समाज का शिक्षित वर्ग यह विश्वास करता है कि अंग्रेजी के उपर अधिकार प्राप्त करना सामाजिक जीवन में ऊंचा उठने का रहस्य है । इसके कारण ऐसे निजी स्कूलों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है जहां पर अंग्रेजी को न केवल एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है बल्कि कक्षा एक से ही सभी विषयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग भी किया जाता है । यह एक सर्वविदित तथ्य है कि अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में पढ़ रहे छोटे बच्चे बगैर समझे विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान/ की विषय वस्तु को अंग्रेजी में रट लेते हैं । शिक्षण शास्त्र का यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि बगैर समझे जो कुछ याद किया जाता है वह बच्चों के लिए बोझिल सिद्ध होता है । यदि पढ़ाई के माध्यम के रूप में बच्चे की मातृभाषा के अलावा अन्य कोई भाषा प्रयोग में लाई जाती है तो यह बच्चों पर शैक्षिक भार का एक बड़ा कारण होती है । लेकिन शहरी तथा अर्द्धशहरी क्षेत्रों में अधिकांश अभिभावक इसे महसूस नहीं करते । वस्तुत: वे शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं । दुर्भाग्यवश, समाज में व्याप्त प्रतियोगी भावना के दबाव को रोकने अथवा इसे उचित दिशा प्रदान करने के स्थान पर हमारी शिक्षा प्रणाली इसके आगे झुक गई है । परिपक्वता की प्रक्रिया की अवहेलना करते हुए अनेक विषयों के पाठ्यक्रमों की विषयवस्तु के स्तर को ऊंचा उठाना अथवा उपयुक्त

कक्षा से पहले ही निचली कक्षाओं के पाठ्यक्रम में उच्चस्तरीय विषयवस्तु सम्मिलित करना शिक्षा में इस प्रवृत्ति के सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण हैं। इंजीनियरी तथा चिकित्सा जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में दाखिले के लिए प्रवेश परीक्षाएं अनेक तरीकों से शिक्षा के लक्ष्यों, विषयवस्तु तथा शिक्षण विधियों को प्रभावित करती हैं। ये परीक्षाएं " प्रश्न संस्कृति" के लिए भी उत्तरदायी हैं जिसने शिक्षा में अपनी जड़ें जमा ली हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में " उच्च उपलब्धि" वाले तथा प्रतिभावान" विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से विभिन्न विभाग तथा संस्थाएं "प्रतिभा खोज के नाम से बड़ी महत्त्वपूर्ण प्रतियोगिताएं आयोजित करती हैं जो विजेताओं को तो सम्मान के संक्षिप्त क्षण प्रदान करती हैं परंतु ऐसे अन्य अनेक प्रतियोगियों की " आत्मशक्ति" को क्षतिग्रस्त कर देती हैं जो अपनी गति तथा अपने तरीके से ज्ञान प्राप्ति के प्रयास की कीमत पर ही इन प्रतियोगिताओं में भाग ले पाते हैं। लाखों बच्चों के मन में असफलता की शर्मिन्दगी का अहसास उन के व्यक्तित्व पर तथा समाज के ताने बाने पर दीर्घ कालीन बुरा प्रभाव डालता है। इसलिए यह बेहतर होगा कि उपलब्धि के लिये समूह को पुरस्कृत किया जाए ताकि सभी को पता चले कि व्यक्तिगत प्रयास के स्थान पर समूह कार्य में सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हासिल करना ही वांछनीय ध्येय है।

06. शैक्षिक माहौल का न होना

शिक्षाक्रम को प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करने के लिये आवश्यक है कि पर्याप्त समय, स्टाफ, भवन तथा इसका रख रखाव, निधियां, शैक्षिक सामग्री, खेल के मैदान आदि अनिवार्य रूप से उपलब्ध हों, परन्तु दुर्भाग्यवश अधिकतर स्कूलों में ये न्यूनतम आवश्यक सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं । यह अत्यधिक चिन्ता का विषय है कि लगन एवं प्रतिबद्धता की भावना से कार्य करने वाले शिक्षकों की संख्या उत्तरोत्तर कम हो रही है जबकि उनमें विवशता और निराशा की भावना बढ़ रही है । पर्याप्त सुविधाओं की कमी, कठोर प्रशासनिक संरचना तथा बढ़ती हुई निराशा की भावना अधिकांश स्कूलों में शैक्षिक परिवेश की अनुपस्थिति के लिए उत्तरदायी हैं ।

अधिकतर शिक्षकों द्वारा अपनाए जाने वाले शिक्षण के तरीके छात्रों के लिए किसी प्रकार की चुनौती प्रस्तुत नहीं करते । अधिकतर कक्षाओं में पठन-पाठन प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रयोग, अन्वेषण या पर्यवेक्षण की अपेक्षा सूचनाओं के सम्प्रेषण पर ही अधिक बल दिया जाता है । यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि हमारे बच्चों (चाहे वे शहरी हों या ग्रामीण) में ही कुछ कमी है । सौभाग्यवश, उन्होंने ज्ञान का अलग- अलग वर्गों में विभाजन नहीं किया है और उनकी रुचि मात्र सूचनाओं को ग्रहण करने की अपेक्षा अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों को समझने में होती है । शिक्षा प्राप्ति के दौरान और आयु बढने के साथ-साथ उनकी कल्पना एवं जिज्ञासा तथा बालसुलभ कोमलता समाप्त हो जाती है। किसी भी चीज को सीखने से पहले वे यह समझना चाहते हैं कि उस चीज को जानने की आवश्यकता क्यों है ? क्या तथाकथित " उपयुक्त शिक्षा" के नाम पर हमें उनकी खोजने तथा स्वयमेव कुछ सीखने की सहज इच्छा को कुचलते रहना चाहिये ?

LIBRARY & DOCUMENTATION CENTRE
National Institute of Educational
Planning and Administration.
17-B. Sri Aurobindo Marg,
New Delhi-110016 D-7786
DOC, No ... 02

बच्चों को प्राकृतिक वस्तुओं के बारे में अवलोकन एवं अन्वेषण करने की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु इसके साथ साथ उन्हें किताबों के संसार की छानबीन करने का अवसर भी नहीं प्रदान किया जाता । साधारणतया अधिकतर स्कूलों में इस बात की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती कि सीखने के संसाधन के रूप में पुस्तकालय भी स्कूल में उपलब्ध होना चाहिये । यहां तक कि उन गिने चुने स्कूलों में जहां पुस्तकालय हैं वहां पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें न के बराबर होती हैं और उपलब्ध पुस्तकें भी अलमारियों में ही बन्द रहती हैं । पाठ्यक्रम का भार महसूस किये बिना प्रकृति के सौंदर्य एवं समृद्धि का अनुभव प्राप्त करने और " विचारों" के प्रति बच्चों को आकर्षित करने के लिए हमें स्कूलों में पुस्तकालयों के विकास तथा उनके पर्याप्त एवं सही उपयोग को प्राथमिकता देनी होगी ।

इसी तरह जिन स्कूलों में, पर्याप्त सामग्री सहित विज्ञान प्रयोगशालाएं हैं, वहां भी उनका प्रयोग तथा खोज के लिए उपयोग नहीं होता । प्रयोगशाला को एक ऐसा स्थान नहीं समझा जाता जहां बच्चे ऐसे प्रयोग भी कर सकें जो उनके पाठ्यक्रम में निर्धारित नहीं हैं तथा जिनके आधार पर वे अधिक छानबीन के लिये कोई नई बात प्रस्तुत कर सकते हैं । बच्चों की प्राकृतिक प्रतिभा की पहचान करते हुए उनमें अवलोकन तथा खोजबीन के द्वारा सीखने की योग्यता का विकास करना प्रयोगशाला का मुख्य उद्देश्य होता है । अंतिम परिणाम पर अत्यधिक बल देते हुए निर्धारित प्रयोगों तक ही सीमित रहना इस भावना के विपरीत है । प्रयोगशाला की कल्पना " अन्वेषणशाला" के रूप में की जानी चाहिये तथा स्कूलों को बच्चों की जरूरतों के अनुकूल " प्रयोग " चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिये ।

सिफारिशें

हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्कूली बच्चों पर शैक्षिक भार की समस्या केवल अत्यधिक उत्साही पाठ्यक्रम विशेषज्ञों, या शिक्षकों या स्कूल प्रशासकों या पुस्तक प्रकाशकों या जिला, राज्य या केन्द्रीय शिक्षा अधिकारियों के कारण उत्पन्न नहीं हुई है । लेकिन ये सभी लोग इस समस्या को बढ़ा भी सकते हैं और कम भी कर सकते हैं । परन्तु हमारे समाज में एक अन्य गम्भीर बुराई है जो बच्चों का प्रभाव डालती है । यदि हम जीवन में उपयोगी कार्य करने की वास्तविक क्षमता के बजाय कुछ विशिष्ट योग्यताओं को महत्व देना जारी रखते हैं तथा यदि शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने में सक्षम और असमर्थ व्यक्तियों के बीच आर्थिक अन्तर बढ़ता रहेगा, तो सम्भवतः हम बच्चों को खुशी से शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करने के बजाय, दिक्कतें पैदा करने के ही प्रयास करते रहेंगे । जैसा कि रिपोर्ट में विश्लेषण किया गया है कि "ज्ञान विस्फोट" तथा "विदेशों के समकक्ष पहुंचने" की धारणाओं से यह समस्या संबंधित है । हमें विश्वास है कि केवल सामान्य प्रशासनिक कार्रवाईयों से इस समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता । इस समस्या पर विस्तृत चर्चा अपेक्षित है क्योंकि यह मुख्य रूप से हमारी सभ्यता, आत्मसम्मान तथा सामाजिक लक्ष्यों की छवि से सम्बन्धित हैं । ऐसी विस्तृत चर्चा, इस रिपोर्ट के प्रकाशन के माध्यम से तथा सेमिनारों, बैठकों तथा मीडिया चर्चाओं के माध्यम से की जा सकती है । इस बात की भी आवश्यकता है कि शिक्षाविद् एवं विचारक इस बुनियादी समस्या पर चिन्तन एवं मनन करें ।

शिक्षा के माध्यम का प्रश्न, विशेषतया प्रारम्भिक स्कूली जीवन में तब तक पूरी तरह से हल नहीं हो पायेगा जब तक हमारे समाज का प्रभुत्व सम्पन्न तथा विदेशों के सम्पर्क में आने वाला वर्ग, "देशी बोली" जिसे हमारे बच्चे स्कूल जाने से पहले अपने विकास के प्रत्येक सप्ताह के दौरान सीख जाते हैं, के बजाय किसी विदेशी भाषा को अधिक महत्व देता रहेगा । इसी कारण से हमने इस सिफारिश को पुनः नहीं दोहराया है कि प्राथमिक स्तर पर केवल मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम हो ।

1. कई संगठन तथा विभाग, जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के लिए स्कूली विषयों, प्रदर्शनियों, निबन्धलेखन, वक्तृता जैसे विभिन्न क्षेत्रों में प्रतियोगिताएं आयोजित करते हैं । विभिन्न क्षेत्रों में बच्चों की योग्यता को पहचान कर उसे सम्मानित करने की भावना पर ही सम्भवत: ये प्रतियोगिताएं आधारित होती हैं । परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ एक व्यक्तियों की क्षणिक प्रतिष्ठा की खातिर अन्य सभी पर इस गतिविधि का अस्वस्थ प्रभाव पड़ता है । व्यक्तिगत उपलब्धि को पुरस्कृत करने वाली प्रतियोगिताओं को हतोत्साहित करने की आवश्यकता है क्योंकि ये बच्चों को आनन्ददायक शिक्षा से वंचित करती है । तथापि स्कूलों में सहयोग पर आधारित शिक्षण प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए सामूहिक गतिविधियों तथा सामूहिक उपलब्धियों को प्रोत्साहित करना चाहिए ।

2.

(क) पाठ्यक्रम निर्माण तथा पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने की प्रक्रिया विकेन्द्रीकृत होनी चाहिए ताकि इन कामों में शिक्षकों की सहभागिता में वृद्धि हो सके । विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य है कि राज्य स्तरीय व्यवस्था के अन्तर्गत जिला स्तरीय बोर्डों या अन्य सम्बद्ध निकायों तथा स्कूलों के प्रधानाध्यापकों तथा अध्यापकों को, स्थानीय परिवेश की जरूरतों के अनुकूल पाठ्यक्रम सामग्री विकसित करने की पूर्ण स्वायत्तता होनी चाहिए । पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य सामग्रियों के सभी पहलुओं में नवाचार के लिए सभी स्कूलों को प्रोत्साहित करना चाहिए ।

(ख) औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा में नवाचारों के प्रति समर्पित पूर्ण स्वैच्छिक संगठनों को पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों तथा शिक्षक प्रशिक्षण के विकास में स्वतंत्रता तथा सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए । ऐसे संगठनों के अनुभवों के प्रचार-प्रसार के लिए उपयुक्त व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए ।

(ग) हम ग्रामीण, ब्लॉक तथा जिला स्तर पर शिक्षा समितियों के गठन संबंधी विचार का समर्थन करते हैं ताकि वे अपने कार्यक्षेत्र में स्कूलों के नियोजन तथा निरीक्षण का कार्य कर सकें ।

(घ) शैक्षिक उपकरणों की खरीद, मरम्मत तथा बदलाव के लिए स्कूल प्रधानाचार्य के अधिकार में पर्याप्त आकस्मिक राशि (स्कूल के कुल वेतन बिल के 10% से कम न हो) का प्रावधान होना चाहिए ।

3. पाठ्यपुस्तक निर्माण की संस्कृति में परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि पाठ्यपुस्तकों के लेखन में अधिक अध्यापक भाग ले सकें । विभिन्न विषयों के वैज्ञानिक तथा विशेषज्ञों को पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के काम में पुस्तकों के लेखक के रूप में नहीं, बल्कि परामर्शकों के रूप में शामिल किया जाए । प्रबुद्ध एवं नवाचारी शिक्षकों को इस संबंध में पहल करनी चाहिए तथा इन शिक्षकों को पुस्तक लेखन कार्य में प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ।

4. विभिन्न राज्यों में स्कूली शिक्षा (पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें तथा परीक्षा) की कम से कम तीन प्रणालियां एक साथ चल रही हैं । प्रत्येक राज्य में अधिकांश स्कूल राज्य शिक्षा बोर्ड से सम्बद्ध हैं । जबकि कुछ स्कूल केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अथवा भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् से संबद्ध हैं । दिल्ली के अलावा अन्य राज्यों में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबद्ध स्कूलों को उच्च-वर्गीय स्कूलों के रूप में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त है । केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम राज्य बोर्डों के लिये मार्गदर्शक बन जाता है जिसके फलस्वरूप अधिकांश बच्चों के लिये शिक्षाक्रम भारी हो जाता है । अतः समिति यह सिफारिश करती है कि केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अधिकार क्षेत्र को केन्द्रीय तथा नवोदय विद्यालयों तक ही सीमित रखा जाए तथा अन्य सभी विद्यालय राज्य बोर्डों से ही सम्बद्ध होने चाहिये ।

5. नर्सरी स्कूल खोलने तथा उनके संचालन को विनियमित करने के लिए उचित कानूनी तथा प्रशासनिक उपाए अपनाए जाएं । इन स्कूलों को मान्यता प्रदान करने के लिए आवास, स्टाफ, उपकरण तथा खेल सामग्री के सम्बन्ध में मानदण्ड

.../=

निर्धारित किए जाएं । यह सुनिश्चित किया जाए कि ये संस्थाएं पढ़ाई, लिखाई तथा गणित की औपचारिक शिक्षा के रूप में छात्रों पर शिक्षा का अधिक बोझ लाद कर उन पर अत्याचार न करें । नर्सरी कक्षा में दाखिले के लिए परीक्षण तथा साक्षात्कार का प्रचलन बन्द किया जाए ।

(ख) प्राइवेट स्कूलों को मान्यता देने हेतु निर्धारित मानदण्डों को अधिक कड़ा बनाया जाए । ऐसा करने से एक ओर जहां शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार करने में सहायता मिलेगी वहीं दूसरी ओर बढ़ते हुए व्यापारीकरण पर अंकुश लगाने में भी सफलता मिलेगी । इस प्रकार विकसित किए गए मानदण्ड समान रूप से राजकीय संस्थाओं सहित सभी स्कूलों पर लागू हों ।

6. छोटे बच्चों को भारी बस्ते के साथ प्रतिदिन स्कूल जाने के लिए बाध्य करके उन्हें उत्पीड़ित करने का कोई औचित्य नहीं है । पाठ्यपुस्तकों को स्कूली संपत्ति समझा जाय । इस प्रकार बच्चों को व्यक्तिगत रूप से इन पुस्तकों को खरीदने तथा उन्हें प्रतिदिन घर ले जाने की कोई जरूरत नहीं होनी चाहिए । गृह कार्य के लिए तथा स्कूल में पाठ्य पुस्तकों और अभ्यास पुस्तिकाओं के प्रयोग के लिये अलग से समय-सारिणी बनाई जाये जिसकी जानकारी बच्चों को अग्रिम रूप से दी जाये ।

7. गृह कार्य की प्रकृति तथा स्वरूप में आमूल चूल परिवर्तन करने की जरूरत है । प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को कोई गृह कार्य (होमवर्क) न दिया जाए । उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओं में जहां गृह कार्य आवश्यक हों वहां पाठ्य-पुस्तक से हट कर गृह कार्य दिया जाए तथा घर पर जब गृह कार्य करना जरूरी हो, तो बारी-बारी के आधार पर पाठ्य-पुस्तकें बच्चों को उपलब्ध कराई जाएं ।

8. शिक्षक-छात्र के मौजूदा अनुपात (अर्थात् 1:40), को लागू किया जाए तथा कम से कम प्राथमिक कक्षाओं में इसे घटाकर 1:30 किया जाए तथा इसके आधार पर शिक्षा की भावी योजनाएं बनाई जायें ।

9. देश में बाल केन्द्रित सामाजिक वातावरण निर्माण के लिए इलैक्ट्रानिक प्रचार माध्यमों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए । "कृषि दर्शन" कार्यक्रम की तरह से छात्रों शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिये "शिक्षा दर्शन" नामक एक नियमित दूरदर्शन कार्यक्रम शुरू किया जाए ।

10.

(क) शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की कमी के कारण स्कूलों में शिक्षण की गुणवत्ता असन्तोषजनक रही है । बी0एड0 प्रशिक्षण कार्यक्रम में माध्यमिक, प्रारंभिक अथवा नर्सरी स्तर पर शिक्षण हेतु विशेषज्ञता प्राप्त करने का प्रावधान होना चाहिए । स्नातक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् बी0एड0 कार्यक्रम की अवधि एक वर्ष अथवा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् इसकी अवधि 3 - 4 वर्ष की जाए । स्कूल शिक्षा में हुए परिवर्तनों के संदर्भ में कार्यक्रम की प्रासंगिकता को सुनिश्चित करने के लिये इसकी विषयवस्तु का पुनः निर्माण किया जाए तथा इसे अधिकाधिक व्यवहार केन्द्रित बनाया जाए । इन कार्यक्रमों में इस बात पर जोर दिया जाए कि प्रशिक्षणार्थी स्वतः शिक्षण तथा स्वतंत्र चिन्तन की योग्यताप्राप्त कर सकें । व्यावसायिक पाठ्यक्रम होने के कारण सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम गहनतथा उच्चस्तरीय होना चाहिये । अतः पत्राचार के माध्यम से प्रचलित बी0एड0 डिग्री के पाठ्यक्रमों की मान्यता समाप्त की जानी चाहिये ।

(ख) शिक्षकों की सतत शिक्षा को स्थायी कार्यक्रम के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है । व्यावसायिक दक्षता में वृद्धि करने के उद्देश्य से सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा अन्य कार्यकलापों की व्यवस्थित रूप से रूपरेखा तैयार की जाए तथा कल्पनाशीलता से उन्हें संचालित किया जाए ।

11. दसवीं तथा बारहवीं कक्षा के अन्त में ली जाने वाली सार्वजनिक परीक्षाओं की समीक्षा की जाए तथा इस बात को ध्यान में रखते हुए सुनिश्चित किया जाए कि मौजूदा पाठ्यपुस्तक आधारित तथा "प्रश्न मंच" प्रकार के प्रश्नों के स्थान पर संकल्पना आधारित प्रश्नों की व्यवस्था की जाए । शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए तथा बच्चों को रटने की विवशता से मुक्ति दिलाने के लिये शिक्षा के क्षेत्र में किया गया यह एक प्रयास ही पर्याप्त है ।

12. सभी स्कूल कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों तथा पाठ्यक्रमों की जांच करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक परियोजना दल गठित किया जाए जिसकी सहायता के लिये कुछ उपदल नियुक्त किये जा सकते हैं । उपदलों से यह अपेक्षा की जाए कि वे निम्नलिखित पहलुओं का निर्णय करें :

(1) पढ़ाए जाने वाले अपेक्षित न्यूनतम विषय

(2) प्रत्येक विषय में शामिल की जाने वाली संकल्पनाओं की न्यूनतम संख्या

(3) एक वर्ष में उपलब्ध कुल कार्य दिवसों में शिक्षक द्वारा सुगमतापूर्वक न्यूनतम संकल्पनाओं के शिक्षण हेतु कुल अपेक्षित समय ।

(ख) आधारभूत गणितीय संकल्पनाओं को सीखने की गति को धीमा करने हेतु देश के सभी भागों में प्राथमिक कक्षाओं के गणित के पाठ्यक्रमों की समीक्षा की जाए तथा गणित पाठ्यक्रम की विषयवस्तु का इस प्रकार से विस्तार किया जाये कि उसमें संख्या ज्ञान के साथ साथ/स्थान, आकृति तथा समस्या समाधान को इसमें सम्मिलित किया जा सके । बच्चों के गणित कौशल को तेज करने हेतु प्रारंभिक गणित के पाठ्यक्रमों तथा पाठ्यपुस्तकों में संकल्पनाओं को समझाने तथा उनके विवेकपूर्ण उपयोग के स्थान पर मात्र नियमों को केवल सिखाने का प्रचलन है । भावी पाठ्यक्रमों में इस प्रवृति को समाप्त करने का प्रयास करना होगा ।

§ग§ भाषा की पाठ्यपुस्तकों में स्थानीय एवं बोलचाल के मुहावरे को उचित स्थान दिया जाए । भावी पाठ्यपुस्तकों में बच्चों की जीवन अनुभूतियों, काल्पनिक कहानियों, कविताओं तथा देश के विभिन्न भागों के सामान्य जन-जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाली कहानियों को यथेष्ट रूप में निरूपित किया जाए । पांडित्यपूर्ण तथा कठिन और बोझिल भाषा का प्रयोग न किया जाए ।

§घ§ प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में आज की तुलना में प्रयोग करने की अधिक गुंजाइश होनी चाहिए । स्वास्थ्य तथा सफाई जैसे विषयों में कोरे उपदेशों के स्थान पर पाठ्यपुस्तकों में वास्तविक जीवन की घटनाओं से संबंधित विश्लेषणात्मक चिन्तन पर जोर दिया जाए । प्राथमिक स्तर की विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में जो निरर्थक और महत्वहीन सामग्री शामिल की गई है उसे हटा दिया जाये ।

§ड.§ माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में प्राकृतिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में यह सुनिश्चित किया जाए कि पाठ्यक्रम में शामिल अधिकांश विषयवस्तु को ऐसे प्रयोगों अथवा कार्यकलापों से जोड़ा जा सके जिन्हें बच्चे तथा शिक्षक स्वयं करें ।

§च§ इतिहास तथा भूगोल के अलावा छठी से आठवीं तथा नौवीं और दसवीं कक्षाओं के सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में हमारी सामाजिक- राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था के दर्शन तथा कार्यविधि की जानकारी दी जाए ताकि छात्र सामाजिक, आर्थिक विकास से संबंधित समस्याओं और प्राथमिकताओं का विश्लेषण कर उन्हें आत्मसात कर सकें । इतिहास के पाठ्यक्रम में पुनरावृत्ति के स्वरूप को बदला जाए । प्राचीनकाल के इतिहास का व्यवस्थित अध्ययन माध्यमिक कक्षाओं § 9 तथा 10§ के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए । छठीं से आठवीं कक्षाओं

के इतिहास पाठ्यक्रम में स्वतन्त्रता संग्राम तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के घटनाक्रम पर प्रकाश डाला जाए । आज जिस रूप में नागरिक शास्त्र की शिक्षा दी जाती है उससे बच्चों की स्मरण शक्ति पर भारी दबाव पड़ता है । अतः वर्तमान रूप में नागरिक शास्त्र को समाप्त किया जाए तथा उसके स्थान पर सामयिक अध्ययन को रखा जाए । भूगोल का अध्ययन सम सामयिक वास्तविकता से संबंधित होना चाहिए ।

परिशिष्ट-1

एफ0 सं0 11-20/91-स्कूल- 4
भारत सरकार
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(शिक्षा विभाग)

नई दिल्ली दिनांक 1. 3. 1992

आदेश

विषय:- स्कूल के छात्रों का शैक्षिक बोझ कम करने के लिए तरीके सुझाने के लिए एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति का गठन करने के संबंध में ।

विद्यार्थियों, विशेषकर स्कूलों की निचली कक्षाओं में निरन्तर बढ़ता पढ़ाई का बोझ शोचनीय स्थिति पर पहुंच रहा है । बच्चों पर अधिक बोझ डालने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति से शिक्षण की प्रक्रिया नीरस हो रही है । खेलों, सह-पाठ्यचर्या क्रियाकलाप तथा छात्रों का समुदाय से घनिष्ठ संबंध जैसे उपाय काफी लाभप्रद हो सकते हैं । अतः मानव संसाधन विकास मंत्री ने एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति का गठन करने का निर्णय किया है जो कि स्कूली छात्रों पर पढ़ाई को कम करने के लिए तरीके सुझाएगी ।

2. इस समिति का विचारार्थ विषय निम्नलिखित होगा :-
"जीवन पर्यन्त स्वतः अध्ययन तथा दक्षता निर्माण सहित अधिगम की गुणवत्ता में सुधार करते हुए सभी स्तरों में स्कूली छात्रों, विशेषकर छोटे बच्चों पर पढ़ाई के बोझ को कम करने के तौर तरीकों के बारे में सलाह देना ।"
ऐसा करने में समिति निम्नलिखित कर सकती है ।

(1) पाठ्यचर्या, प्रवेश मानदण्ड तथा विभिन्न स्तरों पर उपलब्धियों से सम्बद्ध सभी पहलुओं की जांच करना तथा

..../-

(11) व्यावसायिक पाठ्यक्रमों सहित उच्च शिक्षा में दाखिलों, तथा परीक्षाओं के प्रभाव को देखना ।

3. समिति में निम्नलिखित लोग होंगे:-

(1) प्रो० यशपाल — अध्यक्ष
भूतपूर्व अध्यक्ष,
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

(2) प्रो० कृष्ण कुमार — सदस्य
सी०आई०ई०
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-7

(3) प्रो० टी०एस० सरस्वती — सदस्य
प्रमुख,
बाल विकास विभाग,
एम०एस० बड़ौदा विश्वविद्यालय
बड़ौदा

(4) सुश्री दीना गुहा — सदस्य
मनोवैज्ञानिक ई-4/9 बेन नेविस
भूलाभाई देसाई रोड
बम्बई

(5) श्रीमती विभा पार्थसारथी — सदस्य
प्राचार्या
सरदार पटेल विद्यालय
नई दिल्ली- 3

§6§ डा0 वी0जी0 कुलकर्णी — सदस्य
निदेशक
होमी भाभा विज्ञान केन्द्र
टाटा मौलिक अनुसंधान संस्थान
बम्बई ।

§7§ प्रो0 परेशनाथ आचार्य — सदस्य
भारतीय प्रबंध संस्थान
कलकत्ता §पश्चिम बंगाल§

§8§ डा0 जी0एल0 अरोड़ा — सदस्य-सचिव
निदेशक,
एस0सी0ई0आर0टी0
वरूण मार्ग, डिफेन्स कालोनी
नई दिल्ली- 110024.

4. समिति कार्य के लिए अपनी पद्धति तथा प्रणाली स्वयं तैयार करेगी

5. समिति अपनी रिपोर्ट छः माह के भीतर प्रस्तुत करेगी ।

7. समिति के सदस्यों को यात्रा भत्ता/दैनिक भत्ता राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा सामान्य दरों से दिया जाएगा ।

7. समिति को लिपिकीय सहायता तथा अन्य सेवाएं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रदान की जाएगी ।

§ डी0एम0डी0 रिबैलो §
संयुक्त सचिव, भारत सरकार

परिशिष्ट- II

आयोजित बैठकों/ कार्यशालाओं/ सेमिनारों तथा चर्चाओं में भाग लेने वाले शिक्षकों, शिक्षाविदों, प्रशासकों, अभिभावकों आदि के नामों के ब्यौरे दर्शाने वाला परिशिष्ट तैयार किया जा रहा है तथा वह एक अलग खंड में निकाला जाएगा ।

LIBRARY & DOCUMENTATION CENTRE
National Institute of Educational Planning and Administration.
17-B. Sri Aurobindo Marg,
New Delhi-110016
DOC, No D-7786
Date 14-10-93

NIEPA DC
D07786